जिन्होने अति-विकट परिस्थिति में भी
खुदकी मानसिक स्थिति को स्थिर रखी...

जिन्होने अति-विकट परिस्थिति में भी
खुदकी वाचिक स्थिति को स्थिर रखी...

जिन्होने अति-विकट परिस्थिति में भी
खुदकी कायिक स्थिति को स्थिर रखी...

शाम सूरज को ढलना सिखाती है...
समा परवाने को जलना सिखाती है...
इन पत्थरों को क्युं कोसते हो यारो!
ठोकरे ही तो इंसान को चलना सिखाती है....

इस शायरी को ध्यान में रखकर
आपत्तिओं में भी जो आगे बढते रहे...
वैसी, *कभी हार नहीं.....*
माननेवाली आत्माओं को.....

।। समर्पणम् ।।

॥ श्री चंद्रप्रभस्वामिने नमः॥ ॥ श्री जीराउला पार्श्वनाथाय नमः॥
॥ नमोऽस्तु तस्मै जिनशासनाय ॥

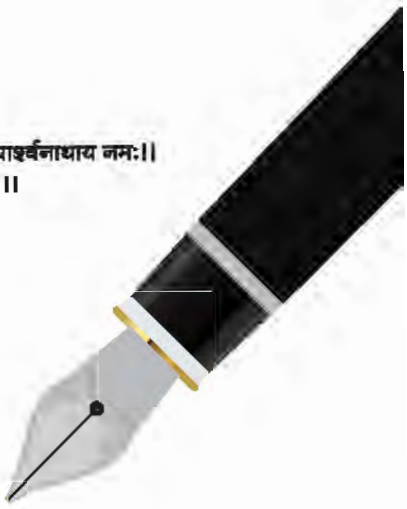

आत्मकथा

भाग-१

प.पू.युगप्रधान आचार्यसम पं.चंद्रशेखरविजयजी म.सा.

* दिव्याशीष *

सिद्धांत महोदधि सच्चारित्र चूडामणि
पूज्यपाद आचार्य श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज के
विनय पूज्यपाद युगप्रधानाचार्यसम
पू.पं.प्रवर श्री चंद्रशेखरविजयजी महाराज

* लेखक *

मुनिराज श्री गुणहंसविजयजी म.सा.

* प्रकाशन *

कमल प्रकाशन ट्रस्ट
102-ए, चंदनबाला कोम्पलेक्स, आनंद नगर
पोस्ट ऑफिस के सामने, भट्ठा, पालडी, अहमदावाद-7.

* प्राप्ति स्थल *

नरेश भाई
373, मिंट स्ट्रीट, राजेन्द्र काम्पलेक्स
(महाशक्ति होटल के पास)
चेन्नई-79 फोन: 9841067888

सुरेश भाई
401, मिंट स्ट्रीट,पंकु कुंज
दुसरा माला, साहुकारपेट
चेन्नई-79 फोन: 9840318499

विनित जैन
1, पल्लीयप्पन स्ट्रीट,
(अन्नापिलै स्ट्रीट के पास) चौथा माला
चेन्नई-79 फोन: 9566292931

* मुद्रक *

DESIGN & PRINTED BY

First Look
IMPRESSION GUARANTEED....
9597511135

प्रस्तावना

विरितिदूत में प्राय: 71 वें अंक में सबसे पहले एक आत्मकथा छापने में आई थी । उसके बाद थोडे दिनों में अलग–अलग आत्मकथाएँ छपती रही । बहुतों की प्रेरणा होती रही और इसलिए ही मन में भी इच्छा होती रही की सभी आत्मकथाओं का स्वतंत्र पुस्तक तैयार करना ।

उन प्रेरणाओं और इच्छाओं का फल यानि प्रस्तुत पुस्तक !

इन आत्मकथाओं में क्या है। यह तो हब पढोगे, तब ही निश्चित करना सिर्फ इतना कहूंगा कि

हृदय और आंख को नम बना दे ऐसी है यह आत्मकथाएँ !

गुरुद्रोहियों को गुरुसमर्पित बनने का आदर्श देती है यह आत्मकथाएँ ।

संतानो को झूठेलाड लडानेवाले मॉ–बाप को रोता कर देती है यह आत्मकथाएँ !

वासना पीडित को ब्रह्मचर्य के पाठ सिखाती है यह आत्मकथाएँ !

6 आत्मकथाएँ है ।

हर एक के पास स्वयं की एक विशिष्ठ आगवी शक्ति है ।

मेरी सभी को हार्दिक प्रेरणा है कि यह संपूर्ण पुस्तक शांति से पढना, एक दिन में सिर्फ एक ही आत्मकथा पढे...उसे बराबर पढे और दूसरे आत्मर्थी जीवों को पढाये ।

दूसरी बात

सामान्य से आत्मकथा यानि एक व्यक्ति का संपूर्ण जीवन चरित्र पर इसमें ऐसा नहीं है, इसमें एक–एक अनुभव को भी आत्मकथा के नाम से लिया है । जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी असंबद्ध लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडम् ।

युगप्रधानाचार्य सम
प.पू.**श्री चंद्रशेखरविजयजी म.सा.** का शिष्य
गुणहंस वि.
महावद 11, वि.सं. 2070
जैन सोसायटी, अहमदाबाद

"तेरे शासन के लिए जीने - मरने की हिम्मत को धारण करुं"

(एक युवान अध्यापक की आत्मकथा)

''तू सभी तरह से सुपात्र है। तुझे संसार का कोई आकर्षण नहीं है। तू इतना समय साथ में रह, तो मैंने देखा कि तेरे वर्तन में संयमी को शोभे ऐसी सौम्यता है। तेरी आँखों में मैंने विकारों को देखा नहीं है। मम्मी - पप्पा भी हा कह रहे हैं। तो फिर दीक्षा ही ले लेना? क्युं संसार में पड रहा है।''

मेरे भाई महाराज के अनेकबार मेरे लिए कहे हुए शब्द ! सच्चे लगाव से पक्की समझ से कहे हुए वे शब्द ! उनकी बातें सुनकर मुझे बहुत बार विचार आता कि भाई म.सा. कि बात मान लूं, दीक्षा ले लूं। भाई महाराज के साथ ही रहना है। उनके गुरुजी भी बहुत संयमी, लागणीशील, प्रभावक है। पूरा ग्रुप अच्छा है। और भाई म.सा. के दादा गुरु का तो पूरे भारत में डंका बज रहा है। मुझे कोई तकलीफ नहीं पडेगी।

पर यह सब विचार आने के बावजूद भी दीक्षा लेने का उल्लास जागृत नहीं होता। मन ना कह देता। इस ही उलझन में मैंने सात वर्ष निकाले मेरी अब उम्र है 25 वर्ष की।

मुंबई भायंदर में हमारा परिवार रहता है।

आज से 15 वर्ष पहले बडे भाई ने वैराग्य से ठाठमाठ से दीक्षा ली। हम करोडपति नहीं थे। पर वैसे तो सुखी थे। उस समय मेरी उम्र सिर्फ 10 वर्ष की। इसलिए दीक्षा वगैरह विषयों में मुझे कुछ ज्यादा समझता नहीं थी। सब देखा अनुभव किया पर छोटी उम्र के कारण से कोई भी वस्तु की आत्मिक संवेदना का मैंने अनुभव नहीं किया था। घर में माता - पिता सभी अनुकूल ! पर मैं कहा था संयम जीवन लेने के लिए अनुकूल !

मेरी उम्र 12-13 वर्ष की हुई होगी। उस समय भाई म.सा. का चौमासा उनके दादागुरु के साथ पालीताणा हुआ। (बीच में एक खुलासा कर दूं कि यह मेरी आत्मकथा में भाई म.सा. केलिए भाई म.सा. शब्द, उनके गुरु के लिए गुरुजी शब्द और दादा गुरु के लिए गुरुमा शब्द का उपयोग करुंगा, आप सभी इस तरह ही पूरी

आत्मकथा पढना।)

पालीताणा में छुट्टी केदिनों में भाई म.सा. के पास रहा । गुरुमा की वाचनाएं, प्रवचन सुनता। एक घंटे में 10-20 गाथा तो खेलते खेलते कर देता। मजा तो बहुत आती और इसलिए ही भाई म.सा. दीक्षा के लिए प्रेरणा करते। दूसरे साधु म.सा. मुझे प्रेरणा करते पर बस ! यहाँ मैं हार जाता। मुझे क्या खटक रहा था? वह मैं खुद समझ नहीं पा रहा था।

पूरा चातुर्मास पूरा हुआ, गुरुमाँ की अनराधार बारीश में मैं नही पिघला। मैं सचमुच कहता हूँ कि उस समय मुझे दुःख हुआ था, क्युं मेरा मन नही मान रहा? 'क्युं मुझे भगवान के पवित्र मार्ग को स्वीकारने की इच्छा नहीं होती? क्युं मैं गुरुमा, भाई म.सा. एवं अनेक मुनियों की हार्दिक प्रेरणा की उपेक्षा कर रहा हूँ? क्यु उनके वचन को स्वीकार नही रहा?'' पर यह सब दुःख मन में ही दबा रहा। मेरा स्वभाव कम बोलने का है, उसमें भी मुनियों के पास बात करने की हिंमत भी नही होती। इसलिए अलग अलग विचारों से भरे दिमाग और हृदय को लेकर मैं पहुँच गया मेरी मुंबई की दुनिया मे ! वे ही मित्र! स्कूल का अभ्यास ! क्रिकेट का पागलपन ! मित्रों का रोजिंदा सहवास ! माता-पिता की लागवसभर प्यार! कौन यह सब छोडकर दीक्षा के कष्टमय मार्ग पर आगे बढने की मुर्खता करे...

और पालीताणा की थोडी बहुत असर मुंबई के वातावरण में गुम हो गई।

तूफान के सामने दीपक की छोटी ज्योत किस तरह टिके?

मेरा जीवन संसार के पापो में रंगने लगा था और शायद पूरी जिंदगी उस किचड में खेलने वाले सुअर की भाँति पूरी हो जाती ।

पर नही !

पूर्वभव में कोई आराधना निश्चित की होगी, कोई पवित्र पुण्य निश्चित बांधा होगा, शासन के प्रति राग आत्मा के कोई कोने में अवश्य जागृत हुआ होगा...उसके प्रताप से ही मेरा जीवन, मेरा आतम को बचाने हेतु मानो कि मेरे भगवान ने, मेरे पुण्य से गुरुमां को, भाई म.सा. को, गुरुजीको, सभी को एक साथ में मुंबई जाने की प्रेरणा का।

गुरुमाँ भायंदर आये, पुनः एक बार भाई म.सा. और गुरुजी को प्रेरणाओं का मीठा-ठंडा प्रवाह बहने लगा। उनकी प्रेरणा में आग्रह, आवेश नही था, मेरे प्रति शुद्ध

लगाव का प्रवाह ही बह रहा था।

उन्होने मुझे ऐसी बाते समझाई कि जिसका मुझे अंतर से स्वीकार करना ही पडा। इसलिए मेरी उलझन बढने लगी। चारित्र ही सच्चा है, संयम ही लेने जैसा है। संसार निकम्मा है। सूअर होते है वे संसार के किचड में घुसते है...अच्छी आत्माएँ नही...? यह सब मैंने अंतर से स्वीकार लिया था।

पर पुनः प्रश्न खडा हुआ। उल्लास का अभाव ! दीक्षा ले लूँ, संसार को लात मारकर निकल जाउँ...? ऐसे ऐसे भाव जागृत नही हो रहे थे।

मैंने बहुत ऐसे मुमुक्षुओं ऐसा देखा था कि जो दीक्षा लेने के लिए बहुत प्रयत्न करते थे, भाग जाते, माता-पिता के सामने पडते, धमकी देते, आंबिल कर करके जबरदस्ती इजाजत मांगते , और तब बडी मुश्किल से दो चार साल में उनकी दीक्षा हो जाती।

उन सभी की अपेक्षा से तो मै भाग्यशाली था क्योंकि मेरे गुरुजी, भाई म.सा. , गुरुमा सभी उत्तम कोटि के महात्मा ! माता-पिता की संपूर्ण संमति ! मेरा शरीर भी अच्छा...पर यह सब शक्कर रहित मिठाई के जैसा ! क्योंकि मुझे ही दीक्षा के भाव जागृत नही हो रहे थे।

एक दिन

भाई म.सा. ने मुझे कहा कि देख, ''भाव नही हो रहे है , तो उसका कारण कर्मोदय तो है ही पर उसके सिवाय दूसरे भी क्या क्या कारण हो सकते है?

तू रात को अकेला बैठकर विचार कर। मन को बराबर देख ले। स्वयं को ठगना मत। यदि सत्य की पकड आये तो मुझे बताना। शायद स्त्री के प्रति आकर्षण रहता हो और इसलिए भय लगता हो कि मुझे दीक्षा नही लेनी...तो भी बेधडक कह देना। तो हम योग्य रास्ता दिखायेंगे और हमको ही लगे कि रास्ता नहीं है, तो फिर तुझे एक की एक प्रेरणा करके दुखी नही करेंगे।

तू एक बात समझ ले, मुझे एक अनुभवी ने कहा कि जिस जीव को दीक्षा के भाव नहीं होते, उसे दो-तीन बार प्रेरणा करते है, उतना ठीक है। पर बाद मे ऐसा लगे कि यहा कार्य हो ऐसा नही लग रहा है, तो प्रेरणा अटका देते है। क्योंकि हर एक प्रेरणा में वह ना बोलता है, इसलिए दीक्षा नही लेने का भाव दृढ होता है। उसमे चारित्र मोहनीय का भी बंध होता है। भाई म.सा. की प्रेरणा काम कर गई।

उस रात सबके सोने के बाद भी मैं जागता रहा और मैंने शोध चालु। की उस शोध में मुझे बहुत कुछ मिला। मेरी बहुत कमजोरीयाँ मुझे मालूल हुई। वे कमजोरी छोटी होने पर भी दीक्षा में विघ्नभूत थी ।

* शरीर के दुःख मुझसे सहन नही होते थे। इसलिए लंबे विहार, लोच, गरमी, ठंडी, बारीश में भूखा रहना पडता है यह सब मुझे कठिन लगता था। मेरे भाई म.सा. के ग्रुप के आचारों में सख्ताई को मैं जानता था। वहा सुखशीलता, छुटछाट का प्रवेश नही था ।

* क्रिकेट देखना, खेलना...यह मेरा प्रिय विषय था, दीक्षा मे वह शक्य नहीं था।

* माता-पिता के प्रति आंतरिक लागणी, हूँफ ! कुछ भी कारण हो, पर दीक्षा में ऐसी लागणी - ऐसी हूँफ की अनुभूति मुझे नही होती थी। कुछ रुक्षता-शुष्कना दिखने मिलती थी। शायद उसका कारण यह भी हो कि दीक्षा में धर्मराग प्रेरित लागणी होती है, संसार में स्नेहराग की लागणी ! भाई म.सा. के ग्रुप में धर्मराग की लागणी भरपूर मिलती है, पर स्नेहराग के लिए तडप रहा था।

* यही वस्तु मित्रवर्ग के लिए भी थी, मित्रों को मिलना, यहाँ वहाँ की बाते करनी। रात को इकट्ठे होकर हसी मजाक की बाते करनी,साथ में धूमने जाना। इन सभी का आनंद कुछ अलग ही था ।

मेरे भाई म.सा. के ग्रुप में ऐसा सब थोडे मिलता था ?

बहुत स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो छोटा बालक जिस मम्मी के बिना नही रह सकता, चाहे जितने खिलौने दो, खाने की अच्छी-अच्छी वस्तुए दो- खिलायो पर बालक को मम्मी चाहिए। भले थोडे समय केलिए मम्मी के बिना रह सकता है, पर उसे तुरंत मम्मी की याद आयेगी और फिर वह इन सभी अनुकूलताओं के बीच मे भी वह रोयेगा, तुम चाहे जितना उसे शांत करने का प्रयत्न करो, तो भी वह रोयेगा...और जैसे ही उसकी मम्मी मिलेगी, उसे गले लगेगा...शांत हो जायेगा ।

मम्मी में ऐसा क्या है? उसका तो शायद शब्दों में वर्णन करने की ताकात नहीं है, पर यह हकीकत तो सभी ही स्वीकारते है ।

मेरी हालत ऐसे छोटे बालक जैसी ही थी, अलबत मुझे संसारी मम्मी के बिना नही चलता है,ऐसा नही है। पर मेरा संसार ही मेरी मम्मी है, उसके बिना नही चलता है। भाई म.सा. के साथ में रहूँ तो अच्छा लगता है, वो अच्छी लगती है, धर्म अच्छा

लगता है। पर वह सब थोडे समय के लिए। यदि वह हमेशा के लिए बहुत हो तो लोगो के बीच में महसूस करता है। भले मैं छोटे बालक की भाँति जोर जोर से ना रोउ, पर अंदर से तो मुझे रोना आता है।

मुझे चाहिए मम्मी ! अर्थात् मेरा संसार ! पुनः थोडे दिन घर जाकर आता हूँ, उस ही पुराने वातावरण में घूम फिरकर आता हूँ, मित्रों का मिलन-मातापिता का मिलन करकेआता हूँ और फिर मुझे होती है। संसार की इच्छा शायद इसी कारण से मैं दीक्षा के लिए उत्साही नही बनता।

सर्वविरति का राग तो था, पर संसार के बंधन में से छूटने का कौवत नही था। मेरी यह कैसी विचित्र मनोदशा...

ब्रह्मचर्य के पालन के लिए मुझे कोई तकलीफ नही, साहाजिक लगता था, फिर भी बडे समुद्र को पार करने वाला छोटे में .....डुब रहा था ।

दूसरे दिन भाई म.सा. के पास गया। ऐकांत में मिलना है। ऐसी प्रार्थना की भाई म.सा. समय निकालकर मेरे साथ एकांत में बैठे ।

और मैं बालक के जैसे रो पडा, आँसुओ को रोक ना सका । मुझे खुद को अच्छा नही लगा। पर उस रुदन पर मेरा काबु ना रहा । भाई म.सा. ने पीठ पर हाथ सहलाकर आश्वासन दिया ।

मैंने रोते-रोते ही बात करनी चालु कर दी।

''साहेबजी ! आप, गुरुजी और गुरुमा कितनी प्रेरणा कर रहे हो। आप सभी को मेरे लिए लगाव अपरंपार है। पर साहेबजी ! मैं दीक्षा नही ले सकूगाँ। आप मुझे माफ करना। इस जीवन में मेरे लिए शक्य नही है। मुझे ज्यादा दुःख इस बात का है कि मैं आप सभी की लागणी को ठेस पहुँचा रहा हूँ। आपकी भावनाओं को मैं पुरा नही कर सकता। आपके उपकारों का ऋण नही चुका पा रहा हूँ। मैने मन को समझाने की बहुत कोशिश की ! पर मुझे लग रहा है कि मैं यह संयमजीवन का पालन नही कर पाऊँगा, मुझे यहाँ प्रसन्नता नही रहेगी।

ब्रह्मचर्य के पालन में मुझे कोई तकलीफ नही है, पर मेरे कर्मो की विचित्रता गिनो या जो गिनो पर शरीर का...मित्रों का...मातापिता का ...क्रिकेट का आखिर पुरे संसार का राग मैं मेरे मन से नही निकाल सकता ।''

भाई म.सा. सुनते ही रहे, मैनें मेरे कारण भी बता दिए । बस भाई म.सा. ने

तुरंत ही बात को बदल दी । ''तूं उत्तम श्रावक बन । इस तरह से आराधना कर ...सभी दीक्षा नही ले सकते, इस भव में नहीं तो अगले भव में दीक्षा मिलेगी ।

भाई म.सा. ने तो बात बदल दी, गुरुजी को भी समझा दिया कि अब दीक्षा की बात मत करना । मेरी उलझन बढती जा रही थी। मुझे डंख था कि मैंने उपकारीयों की बात नही मानी। मैंने उनको अप्रसन्न किया। भले भाई म.सा. या गुरुजी कुछ भी ना बोले, पर मैने उनकी भावना पुरी नही की थी। इसलिए उनको खेद तो हुआ होगा। मैं कैसा अधम ! मेरे उपकारीयों को भी शाता....

पर

योगानुयोग से एक ऐसा प्रसंग बन गया कि जिसने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी, जिससे मुझे और भाई म. वगैरह सभी को आंनद हुआ।

हुआ ऐसा कि भाई म. के विद्यागुरु और गुरुमां के शिष्य एक विद्वान साधु भी तब साथ में ही थे। मुझे उनका कोई विशेष परिचय नहीं था पर उस दिन नियति ने अचानक ही उनका परिचय कराया। मैं उनको वंदन करने गया, रोज जाता ही था। पर उस दिन प्रथम बार बातचीत की शुरुआत हुई। उनको भाई म. ने शायद बात की होगी या नहीं ? वह तो पता नहीं है, पर उन्होंने प्रेरणा दी कि...

''दीक्षा ले ना सको, तो दूसरा भी एक विशिष्ट मार्ग है, जिसके द्वारा तुम जिनशासन की सेवा अच्छी तरह से कर सकोगे और उसमें तुम्हारा हित तो निश्चित है ही, तुम साधु भी नहीं और संपूर्ण संसारी भी नहीं.... यह एक नयी दुनियां है।''

'' वह क्या हैं? मुझे पता नहीं हैं।'' मैंने कुतुहल से प्रश्न किया ।

उन्होंने विस्तार से बात कहनी आरंभ की :- ''आज बारह-पन्द्रह हजार जितने साधु-साध्वी है। सभी उत्तम है, शक्ति सपंन्न है, पर उनको शास्त्राभ्यास के लिए अनुकूलता मिलती नहीं है, अच्छे पढानेवालों का अभाव है। आपका क्षयोपशम तीव्र है। मैंने पालिताणा में देखा है। आप भले दीक्षा ना लो, पर संस्कृत - न्याय - जैन शास्त्रो का अभ्यास बराबर कर लो, तीन-पाँच वर्ष लगेंगे। बाद में साधु-साध्वी को पढाने योग्य बन जाओगे। आपके द्वारा अनेक संयमी तैयार होंगे, संयम में स्थिर होंगे। शासन के प्रभावक बनेंगे, पूरा लाभ आपको मिलेगा।

तुम स्वयं साधु ना बनो, तो जो बन चुके है उनको महान साधु-साध्वी बनाने का कार्य तो कर ही सकोगे।

और यदि ऐसी विशिष्ट सेवा भावपूर्वक हो, तो तीर्थंकर नामकर्म का भी बंध हो सकता है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है।''

मैं उनकी अस्खलित धारा को पीता ही रहा। उसमें मुझे रूचि हुई। ''पर साहेबजी ! आप स्वयं क्युं साध्वीजी म. को पढाते नहीं हो ?''

''मेरी उम्र छोटी है। हमारे समुदाय की मर्यादा के अनुसार मेरा पढाना उचित नहीं है। हाँ बड़ों को योग्य लगे, मुझे सहमति दे, तो मैं पढा सकता हूँ। पर मैं थोड़ी ना वाहन में बैठकर सब जगह जा सकता हूँ? तुम तो गृहस्थ हो, इसलिए सभी जगह जा सकते हो, संयमीओं को पढा सकते हो। वैसे भी हजारों संयमीओं को पढाने का कार्य दो-पाँच-दस से थोड़े ही होगा ? बहुत होंगे तो कार्य हो सकेगा और जल्दी भी होगा।

''मैं किसके पास पढूं ?''

''आपके भाई म. है, मैं हूँ.... हम सब पढायेंगे। उसके लिए आपको हमारे साथ रहना पड़ेगा पर आपके उपर तपश्चर्या करने का कोई बोझा नहीं। नवकारसी पूजा-चौविहार तो आप हमेशा करते ही हो। यहाँ पर इतना ही करना है, अवसर आने पर घर जाने की छूट....''

मैं विचार में पड़ा। यह सब मुझे बराबर लगने लगा, पर यह एकदम नया विचार था इसलिए तुरंत 'हाँ' कैसे कहूँ ?

मुझे सोच में देखकर विद्यागुरू साधु बोले !''शायद आपको यह भय रहे कि मेरी भविष्य की जीविका का क्या ? संसार में रहना हो तो पैसे तो चाहिए ही। उसके बिना तो चलता नहीं है। मैं यदि संयमियो को पढाने में लग जाऊं तो पैसे का प्रबंध कहाँ से हो ? तो यह भय निकाल देना क्योंकि संयमीओं को एक घंटे पढाने का कम से कम वेतन तीन हजार तो मिल ही जाता है।

हाँ ! तुम लखपति - करोडपति नहीं बन सकोगे, पर हजारो - लाखो जैन की तरह मध्यम वर्ग वाले तो बनकर ही रहोगे और यह तो दो कार्य एक साथ होंगे। शासन सेवा का अमूल्य लाभ भी मिलेगा....

''पर इस तरह धार्मिक अभ्यास कराने के पैसे लूँ, तो पाप नहीं लगेगा ?''

''तुम कौनसे आशय से ले रहे हो ? उसके उपर आधार है, यदि पैसे ना लो, तो तुम्हें दूसरे धंधे-नौकरी करनी ही पड़ेगी। तो तुम संयमीओं को पढा नहीं

सकोगे इसलिए वह रकम अपवाद से तुम ही ले लो और दूसरी चिंता छोड़ दो। इसके लिए आप हमारे ऊपर श्रद्धा रखो। गुरुमां गीतार्थ है। वे कहेंगे तो ही करना है ?''

'मुझे यह सब योग्य लग रहा है,' यह ख्याल मुनि को आ गया और वे बोले - शायद तुमको शंका भी हो कि शादी का क्या ? ऐसे पंडितों के साथ कौन शादी करने के लिए तैयार होगा ? तो उसकी भी चिंता छोड़ दो। तुम शासन के लिए भोग दे रहे हो, तो इतना पुण्य तो निश्चित मिलेगा कि जिससे जीवन में आते सभी प्रश्नों का समाधान मिलेगा। प्रभु, शासन और धर्म पर श्रद्धा रखो। और आज के जमाने में अच्छे लड़के नहीं मिलने से संस्कारी माँ-बाप खुद की लड़की के भविष्य के लिए बहुत चिंतित है। वे ऐसे संस्कारी युवानो की ही तलाश में है। बस.... इतना संक्षेप में समझो ।''

विद्यागुरू ने मेरे तमाम प्रश्नो का समाधान किया। मैंने निश्चित कर लिया कि 'मुझे यह मार्ग अपनाना है' ओर वे मुनिराज मुझसे 10 साल बड़ थे फिर भी मुझे 'तू' कहने के बदले 'तुम' कहते थे, इस बात का मेरे ऊपर बहुत असर हुआ था। क्या उनकी भाषा में उच्चता।

उसमें भी अंत में तो उन्होंने विजय फटका लगा दिया। वे बोले ''देखो, तात्कालिक कोई निर्णय नहीं लेना है। अपने पास एक अच्छे ज्योतिषी है। तुम उनको मिलो। तुम्हारी कुंडली बताओ, मम्मी-पापा को साथ मे रखो, हम सभी की गैरहाजरी में मिलो, और तुमको जो पूछना है वह पूछो। वे ज्योतिषी कुंडली के आधार से साफ साफ बता देंगे और मुझ पर भरोसा रखना कि मैं उस ज्योतिष को कुछ कहूँगा नहीं। वह पहले तुमको ही मिलेंगे। उसके बाद निर्णय लेना। हम कल गुरूमां के साथ मीरा रोड जाने वाले है। वहां शाम को उनको बुला लेंगे। वहां एकांत में उनसे मिल लेना।

और सबसे महत्व की बात है कि यदि तुम यह निर्णय ले लोगे, तो भाई म., गुरूजी और गुरूमां सभी को बहुत आनंद होगा। तुमको भी पूरा संतोष होगा। दीक्षा ली होती तो अच्छा, पर दीक्षा लिए बिना दीक्षितों को स्वाध्याय कराकर भविष्य में तुम महान् दीक्षित निश्चित बनोंगे। जाओ.... फतेह करो, बहुत-बहुत शुभेच्छा....।''

इतना कहते कहते वे गद्‌गद् हो गए। 'हजारो संयमी स्वाध्यायी बनकर शास्त्रज्ञानी बनकर सच्चे संस्कारी बने....' ऐसी उनकी पवित्रतम भावना उनके प्रत्येक शब्दों में दिख रही थी। उनकी हार्दिक प्रेरणा ने मेरे मन को पिघला दिया।

और मेरे जीवन में ऐतिहासिक बदलाव का, भविष्य में बनने वाले ऐतिहासिक प्रसंग का बीज बो दिया गया।

दूसरे दिन मीरा रोड के विशाल उपाश्रय में नीचे शाम को दो घंटे ज्योतिषी के साथ मेरे परिवार के साथ निजी मीटिंग की। उनके जवाब से उत्साह बढ गया। उनके द्वारा की गई सूचनाओं से यह भी ख्याल आ गया कि 'वे सच बोल रहे है, स्पष्ट बोल रहे है'।

मीटिंग के बाद हम ऊपर गए। विद्वान साधु को मिले। हमारी हाजरी में ही ज्योतिषी ने कह दिया ''इसका मन चंचल है, इसलिए भविष्य में विचार बदलते रहेंगे। फिर भी दूसरे सब योग बहुत सुंदर है। आपके सबके समझाने पर स्थिर हो जायेंगे। दीक्षा ले तो भी अच्छा, पर यह तो.....।''

और मैंने निर्णय कर लिया, ''मुझे चार-पाँच वर्ष में अच्छे से अच्छा अभ्यास करके शासन के संयमीओं को जोरदार अभ्यास कराना है। मेरा जीवन इसी में ही बिताना है।'' मेरे भाई म. बहुत खुश हुए, गुरूजी की आँखों में से हर्षाश्रु छलकने लगे। अनेक कार्यों में व्यस्त गुरूमां भी यह समाचार सुनकर खुश हुए और इन उपकारियों को प्रसन्न करने वाला 'मैं' भी बहुत खुश हुआ। हाँ! वह प्रेरक विद्यागुरु भी खुश थे।

भाई म. के पास मेरा अभ्यास शुरु हुआ। प्रकरण-भाष्य-कर्मग्रन्थादि का अभ्यास होने लगा। बीच-बीच में घर भी जाता था और स्कूल की पढ़ाई भी छोड़ी नहीं थी, क्योंकि इस धार्मिक क्षेत्र का बिलकुल अनुभव नहीं था। 'इसलिए मैं सफल बनूँगा या नहीं ?' ऐसा संदेह मन में रहा करता था इसलिए मुझे स्कूल का अभ्यास भी चालू रखना ही पड़ा।

बस, मेरी चंचलता का कारण यही विषय बन गया। घर पर जाऊँ, तो मित्र मिलते है। उनके साथ भविष्य की चर्चा होती थी, वे सभी डिग्री लेने के लिए दौड़ रहे थे। उन हजारो-लाखो विद्यार्थियों में सिर्फ मैं ही अलग रास्ते पर था। वे सभी मुझे सलाह देते, ''तू गलत कर रहा है। यदि डिग्री नहीं होगी तो तेरी किमत क्या?

किस तरह कमाएगा ? तुझे कौन नौकरी पर रखेगा? आज अनपढ की कोई किमत नहीं है।''

इन सब बातों से मैं घबरा जाता था। दूसरी ओर भाई म.सा. प्रेरणा करते कि ''अब स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दे। सिर्फ और सिर्फ धार्मिक पढाई कर, तो ही यह भवसमुद्र पार होगा। अपना लक्ष्य पूरा होगा।''

उनकी बात भी सत्य थी। स्कूल-कॉलेज के अभ्यास में तो पूरा दिन निकल जाता था, इसलिए धार्मिक अभ्यास तो कम ही होता है। उसमें भी मुंबई में तो आने-जाने में ही पूरा समय चला जाता है।

तो भी मैं स्कूल-कॉलेज का अभ्यास छोड़ दू ऐसा नहीं था। क्योंकि डिग्री के बिना मेरी किमत फूटी कोड़ी जितनी हो जायेगी तथा मुझे संसार में जीना है, दीक्षा नहीं लेनी।

धार्मिक अभ्यास के बाद ऐसी कोई निश्चित जगह नहीं थी कि वहाँ मुझे हमेशा के लिए रहने को मिल जाए, मासिक 20-30 हजार मिले जाए। मुझे तो सिर्फ संयमीओं को ही अभ्यास कराना था।

इसलिए सब कुछ अनिश्चित था। मेरे पास पढने के लिए कौन तैयार होगा ? कितने तैयार होंगे ? वे पढने वाले भी दो-चार-पाँच महिने ही पढ़ेगे, उसके पश्चात् नए-नए पढने वालों को ढूंढना, वे मिले या नहीं ? मुझे पढ़ाना जमेगा या नहीं ? और नहीं तो मेरे भविष्य का क्या ?

हालाँकि सांसारिक शिक्षण के बाद भी आजीविका का प्रश्न तो खड़ा ही रहता है। फिर भी उस दिशा में दौड़ने वाले बहुत दिखते है, इसलिए मुझे भी दौड़ने का मन होता। 'सभी का जो होगा, वह मेरा होगा। ऐसी राहत रहती थी और इस तरफ मैंने जो रास्ता पकड़ा था, उस पर चलने वाला सिर्फ अकेला मैं ही। इसलिए अकेला दौड़ना मुझे भयावह लग रहा था।'

साधु म. पर श्रद्धा थी, फिर भी अंदर से ऐसा लग रहा था कि 'इन सभी को बाहर की दुनियां का कहाँ ख्याल है ? कुछ भी होगा तो परेशान तो मुझे ही होना पडेगा। साधु इसमें क्या कर सकेंगे ?'

इसलिए मैंने निर्णय लिया कि 'डिग्री तो अच्छी ले लू, भले धार्मिक अभ्यास थोडा कम होगा तो भी चलेगा।'

अब मेरी भावना C.A. बनने की थी। इसलिए उसके लिए क्लास करनी पडती है, मेहनत भी सख्त करनी पड़ती है। परीक्षा के दिनों में तो पढाई के पीछे ही पडना पडता है। इन सभी कारणों से भाई म. मुंबई में होने पर भी अभ्यास कम होता था। मेरी उम्र छोटी थी, सिर्फ 17-18 वर्ष की। इसलिए 25 वर्ष तक सी.ए. + धार्मिक अभ्यास दोनों पूरे हो जाए, बाद में मुझे चिंता नहीं। शायद संयमीओं को पढाने में सफलता ना मिले, तो C.A. की डिग्री के आधार से आजीविका तो मिल जाए, लोगों में मेरी इज्जत भी रहे।

दिवाली इत्यादि में बड़ा वेकेशन हो, तब लंबे समय तक भाई म. के पास रहता। ऐसे टुकडे-टुकडे में भी दो बुक + काव्य + न्याय + कितने ही शास्त्रग्रन्थों..... का अभ्यास हुआ। उसी समय उन विद्वान साधु का चातुर्मास मुंबई में हुआ। भाई म. के कहने से मैं उनके साथ चातुर्मास में रहा। तब उन साधु ने मुझे कहा कि ''यहाँ पाँच साध्वीजी है। बड़े के सिवाय सभी नये है, तुमको उन सभी को शास्त्राभ्यास कराना है। शास्त्र भी सरल है।''

मैं घबरा गया। मुझे मेरे अभ्यास पर बिलकुल विश्वास नहीं था। उसमें तीन-चार साध्वीजी को सीधा शास्त्र पढाना। मुझे कम्पकंपी होने लगी। मैनें कहा कि ''साहेबजी ! मैं नहीं पढाऊंगा.....''

पर साधु म. ने जबरदस्ती की। मैं जानता था कि उनकी भावना क्या थी ? वे मुझे इस तरह से प्रेक्टीस कराना चाहते थे।

अंतिम धमकी : **यदि तुम पाठ नहीं दोंगे, तो मैं भी पाठ नहीं दूँगा और दो द्रव्य से एकासणा करुँगा।**

अंत में मुझे झुकना पड़ा।

मेरे जीवन में पहलीबार पंच महाव्रतधारी साध्वीजी को पाठ देने का अवसर आया। सचमुच मुझे बहुत आंनद हुआ कि ''भले ही मैं दीक्षा नहीं ले सकता पर....।'' दूसरी ओर प्रथम अनुभव होने से घबरा भी रहा था। प्रथम दिन पाठ पूरा करके विद्वान साधु के पास पहुँचा, उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई। ''धीरे-धीरे पकड़ आ जायेंगी।'' आश्वासन दिया, और दिन पसार होने लगे। लगभग तीन महिने में ग्रन्थ पूर्ण हुआ। उस दिन उपाश्रय में आकर मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा। मेरा मन कृतज्ञभाव से भर गया था। 'आपने मुझे कहा पहुँचा दिया साहेबजी

! एक भिखारी को चक्रवर्ती की पदवी दे दी। मेरे जैसे सामान्य लड़के को ऐसे महान साध्वीजी भगवंतों को तीन-तीन महिने सफलतापूर्वक पढाने का अवसर देकर मुझ पर अनहद उपकार किया है।' कहते - कहते आँखो में आंसू आ गये।

मुनि म. ने कहा ''यह तो शुरुआत है....''

पर चातुर्मास के बाद इन चारों उपकारीओं का मुंबई से अहमदाबाद की तरफ विहार हो गया। सी.ए. के अभ्यास के कारण मैं मुंबई छोड़कर निकल संकू ऐसा भी नहीं था। बस, इसके बाद का छः महिने का समय मेरे लिए बहुत खराब था। मानसिक तनाव में पसार हुआ। धार्मिक अभ्यास करने की इच्छा मर गई थी। जीवन में शुभभावों की चढती-पड़ती कैसे आती है? उसका साक्षात् अनुभव हुआ। गुरूजन की गैरहाजरी मन को कैसा चंचल बनाती है ? वह स्वानुभव से जाना। ज्योतिषी की आगाहीयों पर श्रद्धा प्रगट हुई। शायद हमेशा के लिए धार्मिक अभ्यास के दरवाजे बंद हो जाते।

पर पुनः कोई पूर्वभव का पुण्य मेरी सहाय में आया। दो प्रसंग एकसाथ बने।

1) अहमदाबाद में गुरुमाता का स्वास्थ्य बिगड़ा।

2) यहाँ मुझे छुट्टी मिली।

भाई म. ने समाचार भिजवाएँ ''पढने के हेतु आ जाओ।''

पढ़ना तो ठीक, पर मेरे जीवन में धर्म का संचार करने वाली गुरुमाता की बिमारी मुझे अहमदाबाद खींच लाई।

हाँ! उनके पास तो मेरे जैसे हजारों युवान थे। उनके मनमें तो मेरी कोई किमत भी ना हो, पर मेरे लिए तो मेरे अनन्य उपकारी, जीते-जागते भगवान, सिर्फ वे ही थे। मैं रोज उनके दर्शन करता, पर वे बिमारी के कारण से मुझे पहचानते नहीं थे, तो फिर बात करने का प्रश्न ही कहां था।

पर मेरे लिए तो गुरुमाँ का दर्शन सर्वस्वसमान था। मैं चौबीस घंटे उपाश्रय में रहता। इसलिए गुरुमाता की सेवा के कार्यों में जहाँ साधु म. की मर्यादा आती, वहां उन सभी की सेवा का लाभ मुझे मिलता। डॉक्टरों को बुलाने से लेकर छोटी-बड़ी सेवा का लाभ मुझे ही मिलता था।

एक तरफ मैं पढता, दूसरी तरफ मैं गुरुमाता की सेवा के अवसर को भी

कभी नहीं चूकता। भाई म. और गुरुजी भी कहते ''ये दिन तेरे लिए अमूल्य है। गुरुमाता की उम्र अब लग रही है। इसलिए जितनी सेवा करने को मिले उतनी कर लो...'' इसलिए ही मेरे लिए अभ्यास गौण था, सेवा मुख्य बनी थी। एक संसारी होते हुए भी गुरुमाता के शिष्य की तरह सभी सेवा के अवसरों का लाभ ले सकता था।

गुरुमाता बहुत बार मुझे एक नजर से देखते, मुझे ऐसा लगता कि मुझे कुछ कहना चाहते है। वे मुझे पहचान रहे है.... पर कुछ बोल नहीं सकते। मुझे बहुत दुःख हुआ। यह वे ही गुरुमां थे, जिन्होंने दो-चार वर्ष पहले ही मुझे हंसते-हंसते दीक्षा के लिए कितनी प्रेरणा की थी। किसी को बार-बार व्यक्तिगत प्रेरणा करने का स्वभाव ही जिनका नहीं था। उनका वह स्वभाव मेरे लिए बदल गया था। पर तब मैंने उनकी बात नहीं मानी, मान नहीं सका। यदि तब दीक्षा के लिए हाँ कहता तो उस महापुरुष के पवित्र हाथ से मुझे रजोहरण मिलता। पर.... हालाँकि अभी भी मैं दीक्षा के लिए कहां तैयार हूँ, अरे ! इस शासन के संयमीओं को पढाने की जिम्मेदारी ली है, उसमें भी कितने समय से ढीला पड़ गया हूँ।

जब-जब गुरुमां के रूक्ष-पतले देह को देखता, तब-तब आँखों में आँसु आ जाते थे। शासन के लिए खून-माँस को जला दिया। शरीर को निचोड़ दिया। क्या उनके उपकारों के स्मरण में हमें कुछ नहीं करना ? नहीं ! नहीं ! मुझे उनकी भावनाओं को स्वीकारना ही है, आखिर मेरे द्वारा स्वीकारीत मार्ग के लिए भी वे प्रसन्न ही थे।

उसमें तो मुझे पीछे नहीं पड़ना है। ऐसी अलग - अलग भावनाएँ मन मे उत्पन्न होती थी, और वहीं 2067 का चातुर्मास नजदीक आया। मेरे सद्भाग्य से अहमदाबाद के ही एक संघ में गुरुमां का चातुर्मास था हालाँकि वे अब संपूर्ण निष्क्रिय थे। एक कदम भी नहीं चल सकते थे। बोलना लगभग बंद हो चुका था। फिर भी उनका अस्तित्व ही हमारे जैसों के लिए आदर्शरुप था और उसमें साथ में गुरुजी और भाई म. भी थे।

चातुर्मास के प्रारंभ में ही गुरुजी वगैरह ने मुझे प्रेरणा दी कि ''तुम यहाँ साध्वीजी म.सा. को पढाओ और इस समय सामाचारी प्रकरण - पंचाशक वगैरह कठिन ग्रंथों का अभ्यास कराना है।'' मैंने उस समय बात स्वीकार कर ली और

दूसरी बार मुझे संयमीओं को पढाने का अवसर मिला। पर इस समय... पढ़नेवाले साध्वीजी होशियार थे, बड़े थे। न्यायभाषा के ग्रंन्थ थे। मेरा आत्मविश्वास और उत्साह दोनों बढ़ गए थे।

पर बड़ी मुश्किल वहाँ खड़ी हुई कि गुरुजी और वे विद्वान साधु.... दोनों ने मुझ पर दबाव डाला कि ''तुम्हें अभी पढाने के पैसे लेने ही है....'' भले अभी आपको जरुरत नहीं है पर आगे जरुरत पडेगी।

सच कहूँ ? गुरुमाता की इतने दिनों तक सेवा करने के बाद मन के विचारों में बदलाव आ गया था। ''आजीविकारूप भी मैं पढाने के पैसे तो नहीं लूंगा पापा की जो मूडी है, उसमें से मेरा गुजारा हो जायेगा। और सी.ए. बनूंगा, तब तो उसकी आवक मिलेगी ही ना?'' ऐसा मैंने दृढ़ निश्चिय कर लिया था। इसलिए मैंने विद्वान साधु और गुरूजी दोनों को विनंती की कि 'मुझे पैसे नही लेने है। मैं पढाऊंगा तो सही।'' पर वे नहीं माने। ''तू अभी छोटा है, पता नहीं चलता, तूने दूनियाँ नहीं देखी।'' वगैरह वगैरह कहा।

मुझे उलझन हुई कि क्या करना ? पर दोनों बड़ों के सामने टिकना मुश्किल था और सचमुच पैसे लेना शुरु कर दिया। बड़ों के कहने के अनुसार वह पैसे धर्मक्षेत्र में ही खर्चता.... पर उसके पहले मैंने भाई म. की सलाह ली। उन्होंने गुरूजी और विद्यागुरू से परे होकर कहा कि ''तेरा सत्व हो तो तू पैसे मत लेना। जब मैंने घर पर पापा को फोन किया, कहा कि ''यहां घंटे की पढाई का चार हजार, महिने के आठ हजार लेने का गुरुजी का आदेश है।''

तब मेरे मम्मी-पापा ने क्या जवाब दिया, पता है ? आप नहीं मानोंगे ? पर फोन पर ही मुझे हर्ष के अश्रु आ गए। पापा बोले ''बेटा ! साध्वीजी भगवंतो को पढाने का एक भी पैसा लिया है तो खबरदार ! मैं तुझे घर में आने नहीं दूंगा। तू पढता-पढाता है, उसमें मुझे कोई दिक्कत नहीं है पर पैसे लेने हो, तो बेहतर है कि तू अभी ही घर वापस आ जा। तुझे पूरी जिंदगी संभालने की जवाबदारी मेरी। तेरे पापा करोड़पति भले ना हो, पर इतने तो गरीब नहीं है कि तेरे जैसे लड़के को संभाल ना सकें।''

पापा के बाद मम्मी ने फोन हाथ में लिया, उसका भी इतना ही कडक-स्पष्ट जवाब। 'एक भी पैसा नहीं लेना।'

भांयदर के दो रूम-किचन के छोटे फ्लेट में रहते मुझे लग रहा था कि मेरे जैसा श्रीमंत कोई नहीं है। ऐसे माता-पिता ही मेरी श्रीमंताई है। उन माँ-बाप को तीसरा लड़का नहीं था, कि जिसकी आशा में वह जी रहे हो। 'एक ने दीक्षा ली, मैं इस रास्ते पर और उसमें यदि पैसे नहीं लेने हो तो....' पर अपनी बुद्धि के गणित से भी उनको श्रद्धा के गणित पर अधिक विश्वास था। लाखों कम्प्यूटर भी इकट्ठे होकर यह गणित नहीं कर सकते है।

मैंने भी फोन पर जवाब दे दिया ''मम्मी-पापा बेफिक्र रहना। अब मैं एकदम मक्कम हूँ। आपके अनंत उपकारों के शिखर स्वरुप आज आपने यह उपकार किया है। भवोभव आपके जैसे ही माँ-बाप मुझे मिले... '' मैं आगे बोल ना सका, हृदय भर आया, फोन कट कर दिया।

गुरूजी और विद्वान साधु को विनय के साथ, ना कह दी। और एक भी पैसे नहीं लेने की शर्त से, संयमीओं के प्रति बहुमान भाव के साथ ''मैं दीक्षा नहीं ले सकता, पर लेने वालो का सहायक बनकर मेरे कर्मों को खपाऊँ (नाश करुँ)।'' सिर्फ इस अरमान के साथ, गुरुमाता की मुझे शासन सुभट बनाने की भावना को साकार करने के दृढतम निर्णय के साथ, मैंने साध्वीजी भगवंतों को अभ्यास शुरु कराया।

''मैं पैसे नहीं लेने वाला था फिर भी पूरे उत्साह के साथ पढ़ाता था।'' इस बात का असर साध्वीजी म.सा. के ऊपर बहुत हुआ। वे भी बड़े उत्साह से पढ़ाई करते थे। पाठ-लेखन वि. में मैं सख्ताई करता, तो भी उनको अच्छा ही लगता। मेरी सूचनाओं का वे बराबर पालन करते थे। मैं भी खुमारी के साथ पढ़ा रहा था। संघ की एक प्रतिष्ठित श्राविका ने जब एकान्त में साध्वीजी के साथ बात करते कहा कि.... 'यह पंडितजी'..... वहां ही बुजुर्ग साध्वीजी ने अटकाकर तुरंत कहा ''बहन ! जो पैसे नहीं लेते, उसे पंडितजी नहीं कहते। यह तो उत्तम श्रमणोपासक है।'' मेरे लिए इतने पूज्य भाव जब जानने में आए, तब मेरा हृदय भर आया। पैसे लिए बिना मुझे कितना मिला।

जब यह सब मैंने विद्वान साधु को कहा, तब वे भी गद्‌गद् हो गए, मुझे कहदिया ''अब मैं पैसे लेने का मेरा आग्रह वापस ले रहा हूँ। भविष्य में जो होगा देखा जायेगा। बाकी तेरे सत्व के लिए लाख-लाख धन्यवाद। तूने एक महान् आदर्श खड़ा किया है।''

अलबत उन्होंने मुझे यह भी समझाया कि ''दूसरे पैसे लेते है, उसे तू पाप मत समझना। उन्हें जरूरत है इसलिए स्वीकारते है। पैसे लेकर भी वे तो शासन को लाभान्वित कर रहे है ना। इसलिए उनके प्रति तिरस्कारादि मत रखना।''

अब अंतिम प्रसंग :- गुरुमाता का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। उनकी शक्य सेवा का लाभ लेकर मैं कृत-कृत्य बनता। पढ़ने का कम हो, तो भी परवाह नहीं करता। साध्वीजी को भी कह दिया था कि ''गुरुमा की सेवा के हिसाब से मुझे देर हो सकती है, तो उसकी तैयारी रखना।''

पर चातुर्मास के एक महिने बाद गुरुमां का देहांत हुआ, मेरी नजर के सामने उन्होंने अंतिम श्वास छोड़ी। नहीं ! ऐसा लगा ''गुरुमां नहीं, मेरे प्राण गये। फिर भी आश्चर्य है कि ''मैं जी रहा हूँ?''

बस, फिर तो अंतिमविधि शुरु हुई। गुरुमां जैनसंघ की महान विभूति होने से उनके अंतिम दर्शन के लिए लाखों लोग उमड़ पड़े। अंतिम पालखी यात्रा 22 कि.मी. चली। मैं साथ में ही रहा, पालखी लेने का लाभ लेता रहा। उससे मुझे क्या मिलेने वाला था? यह तो मुझे ही पता नहीं था। पर ''मुझे तेरा भाग लग रहा है, और अब थोड़े घटे के लिऐ मुझे उठाने का मौका मिल रहा है, तब क्या फरियाद करनी? कि मुझे गुरुमां का भार लग रहा है।''

''नहीं ! मैंने मेरी शक्ति के अनुसार ही पूरा लाभ लिया है।'' गुरुमां के मृतदेह को अग्निसंस्कार देने में आया। मैं तो श्रीमंत था नहीं इसलिए वह लाभ तो मुझे नहीं मिला। पर मेरी नजर के सामने चंदन की चिता पर जब गुरुमां के मृतदेह को चढाने में आया, तब.... 'इस देह के दर्शन अब नहीं मिलेंगे, इस माता की सेवा अब पुनः नहीं मिलेगी।'

इन सभी विचारों ने मन को घेर लिया। आकाश में से बारीश और आँख में से आँसु टपक रहे थे। मुझे आज किसी के भी आश्वासन की जरुरत नहीं थी। और किसी को आश्वासन देना भी नहीं था। बस ! एक तरफ खड़ा रहकर यह अंतिम दृश्य देख रहा था।

जैसे-जैसे चिता की आग विशाल बनने लगी। वैसे-वैसे मेरे विचारों ने भी विराट स्वरुप धारण किया। ''गुरुमाता व्यक्तिगत के विरोधी थे, मैं कैसे गुरुमाता नाम के व्यक्ति का रागी बनूँ ? हाँ ! गुरुमां में जो व्यक्तित्व था, जो गुण थे, वे तो आज भी कम-ज्यादा अंश में हजारों संयमीओं में जीवंत ही है। मुझे गुरुमाता नाम

के व्यक्ति से नहीं पर गुरुमाता के उत्तम व्यक्तित्व की पूजा करनी है।

गुरुमाँ ! अब से मैं प्रत्येक संयमी में तेरे दर्शन करुंगा। जहाँ जो भी गुण दिखे, वहाँ तू ही है, अब मैं ''तू नहीं है'' ऐसे नहीं मानूँगा, पर सभी जगह आपको ही ढूंढने का प्रयत्न करुंगा, और मुझे सर्वत्र मिलोगे ही।''

और उस समय ही नया विचार प्रगट हुआ। ''गुरुमाँ! यदि प्रत्येक संयमी में मेरी गुरुमां है ही, तो उन तमाम व्यक्तियों के प्रति मेरा बहुमान भाव पुष्कल होना चाहिए। और उन संयमीयों के लिए मेरे पास से आपको जो भावना थी, वह अब मुझे ही पूरी करनी चाहिए।

गुरुमाता! आपकी इस चिताज्योत ने मुझ में नई ज्योत प्रगटाई आपकी साक्षी में मैं संकल्प करता हूँ, दीक्षा भले ना लूं, पर आपकी भावना के अनुसार शासन के संयमीओं को अच्छा अभ्यास कराकर नयी-नयी शासन ज्योत प्रगटाने में निमित्त तो निश्चित बनूँ।

गुरुमां ! यह मेरा वचन है।'' बस, उस पल में गुरुविरह का भयानक शोक शांत हो गया था, मेरे कर्त्तव्य के लिए मैं जागृत बन गया था।

उसके बाद एक महिने के बाद विद्वान साधु को मिलना हुआ। मेरे संकल्प की बात की। वे बहुत खुश हुए। उन्होंने मुझे भावपूर्वक प्रेरण की कि ''तुम सी.ए. बनने की भावना को छोड़ दो। सी.ए. बनने के लिए 4-5 वर्ष कम से कम लगेंगे। अब वे वर्षों को बिगाडना नहीं है। अभ्यास कराने में साध्वीजी भगवंतों को कितना लाभ होता है यह तो आप प्रत्यक्ष देख ही रहे हो। क्यूं इस महान सुकृत को छोड़कर इस अभ्यास के पीछे समय बिगाड़ रहे हो।

निश्चित! तुम संकल्प के अनुसार सी.ए. बनने के बाद भी यह कार्य करोगे ही, पर उसमें इतने वर्ष बिगडेंगे उसका क्या ?

शासन के लिए भोग देनेवाले बहुत कम लोग होते है, उनमें से तुम एक बनो, ऐसी हमारी इच्छा है।

यदि तुम हाँ कहो, तो तुम्हारे भरोसे एक जबरदस्त शास्त्राभ्यास अभियान को चालू करते हैं। चारों तरफ प्रचार करते हैं कि साध्वीजीयाँ कोई भी हिसाब से अभ्यास करें... और उस अभ्यास के लिए आपका उपयोग करें। एक ऐतिहासिक योजना की नींव हम तुम्हारी सहायता से डालना चाहते है, क्योंकि तुम एक महान आदर्शरुप हो।''

विद्वान साधु ने मुझे लालच दिया, लोभ भी जग रहा था। पर 'सी.ए. बनने के बाद मैं यह सब करुँ' ऐसे होते रहता है। इसलिए अभी तक मैंने अंतिम निर्णय लिया नहीं हैं। हाँ ! संयमीओं के प्रति प्रेम बहुत बढ़ गया था। अभी पर्युषण के बाद मुझे मलेरिया हुआ, गुरुजी के पास संभाल नहीं होती थी, इसलिए मैं मुंबई चला गया। थोड़े दिनों में बुखार तो उतर गया पर बैचेनी-अशक्ति सख्त रहती थी। फिर भी मुझे एक ही चिंता रहती थी कि वहाँ साध्वीजीओं का पाठ बिगड़ रहा है। उनके दो ग्रन्थ मुझे पूरे करवाने है। चातुर्मास पूर्ण होने को आया है।'' और मैं कमजोर शरीर वाला, मम्मी-पापा की ना होते हुए भी अहमदाबाद आया। बैचेनी होने पर भी पाठ शुरु किया। पूज्य साध्वीजी भगवंतों ने तो बहुत कहा कि ''थोड़े दिन पाठ बंद रखोगे तो चलेगा।'' पर मेरा मन नहीं माना। मैंने स्पष्ट कहा कि ''मुझे किसी भी तरह चातुर्मास तक दो ग्रन्थ पूर्ण करने है। इसलिए मैं शक्य उतना पाठ देने का प्रयत्न करुंगा।''

मुझे अब समय नहीं देखना था। पैसे नहीं लेने के फायदों को मैंने साक्षात् देखे है।

बस, प्रभु मुझे इतनी शक्ति दे कि 'मेरा जीवन पूरा हो वहां तक मैं कम से कम 400-500 साधु-साध्वीजी को ऐसा पढाऊँ कि वे महान संयमी, शासन प्रभावक, अनेकों के तारणहार बनें। मैं किंग भले ना बना, किंग मेकर तो बनूं।'' विद्वान साधु मुझे कहते कि ' जिस तरह गरीब साधर्मिक को अनाज-पानी हर महिने देते है, तो वे प्रायः हमेशा के लिए गरीब ही रहते है। उनको देते ही रहना पड़ता है, वे स्वयं स्वाधीन नहीं बनते।'

वैसे पुस्तक को पढ़कर या व्याख्यानों को सुनकर संयमी स्वाधीन (समर्थ) बने, शास्त्रीय पदार्थों के व्यवस्थित ज्ञाता बने, यह प्रायः अशक्य है। वे हमेशा के लिए पराधीन ही रहते है।

पर जेसे साधर्मिको को नौकरी दिलाते है, धंधा कराते है, तो वे हमेशा के लिए समर्थ बन जाते है। फिर उनको कुछ देना नहीं रहता।

वैसे संयमीओं को भी ठोस शास्त्राभ्यास करायें तो वे कठिन ग्रन्थ भी स्वयं पढ सकते है। ऐसी कठिन मेहतन के साथ पढने में आवे तो वे भविष्य में महान संयमी, प्रभावक बन सकते है। तुम्हें यह कार्य करना है।''

उनकी यह भावना-प्रार्थना-शुभेच्छा फलित हो ऐसी प्रभु को प्रार्थना ! मैं

उनकी भावनाओं को साकार करने हेतु समर्थ बनु इतनी तूं मुझ पर कृपा करना। हाँ! पूज्य साध्वीजी भगवंतों को पढाने में एक संकोच भी होता कि अब मेरी उम्र है सिर्फ 20 साल की। अभ्यास करने वाले साध्वीजी भगवंत की उम्र थी 40 वर्ष की। पाठ देते वख्त पहले तो मैंने यही प्रयत्न किया था कि बिलकुल सामने नहीं देखना है। पुस्तक में ही नजर डालकर बोलते रहना है पर उसमें तकलीफ होती थी। जब प्रश्नोत्तरी होती थी, तब 'पढ़ने वालों को संतोष हुआ कि नहीं? मैंने जो पदार्थ समझाया है वह समझ में है या नहीं ?' यह मुझे किस तरह पता चले ? आखिर मैंने बड़ो को बात कही, तब वे सभी बहुत प्रसन्न हुए। ''तेरी यह संभाल, जागृति, यह विवेक ही तेरी पात्रता की निशानी है। अभ्यास कराते वख्त सामने देखने का हो जाता है, वह स्वाभाविक है। पर तू अकेले साध्वीजी को पढाता नहीं। कम से कम दो साध्वीजी तो बैठे ही हो, दूसरा तेरे हृदय में संयमीओं के प्रति अपूर्व पूज्यभाव है, तीसरा यह एक अपवाद मार्ग ही है, तुझे साध्वीजीओं को प्रेरणा करनी चाहिए कि हमारे भरोसे पढना छोड दो, स्वयं ही अभ्यास करते-कराते हो जाओ।'' बड़ो की इस प्रकार की सूचना को मैंने बराबर ध्यान में रखा।

विद्वान साधु ने मुझे हंसते-हंसते कहा कि ''हमसे ज्यादा तुम भाग्यशाली हो। हम एक भी साध्वीजी को पढा नहीं सकते और तुम कितने साध्वीजीयों को पढा सकते हो। तुम इस महान पुण्य का अच्छा-सच्चा उपयोग कर लो।''

हास्य स्वरुप में निकली इस बात में इतना तो सत्य है ही कि सचमुच इस विषय में मेरा पुण्योदय असीमित है। मुझे उसका आनंद है, अभी तो मेरे पास बहुत बड़ी जिंदगी है। मेरी उम्र है 20 वर्ष की। धारो की सी.ए. बनु तो भी 25 वर्ष तक तो मेरा अभ्यास पूरा हो जाए। उसके पश्चात् मेरी यही इच्छा है कि मुझे इस काम में पूर्ण जोर लगना हैं। संयमीओं को ऐसा उत्तम अभ्यास कराऊं कि वे हमारे जैसे पंडितजीओं की आशा ही ना रखे। स्वाधीन बन जाएँ, संयम में आश्चर्यजनक सिद्धिओं को प्राप्त करें, शासन के सेवक-रक्षक-पोषक बनें।

25 से लेकर 65 वर्ष की उम्र तक मैं यह कार्य करु, तो भी मेरे पास कुल 40 वर्ष का विशाल समय है। बस, जिनशासन के लिए कुछ करके जाना है। सभी सयंमी मुझे आशीष देना कि मैं मेरी भावना को साकार कर सकूं।

– लि. श्रमणोपासक युवान

1. संयमीओं श्रावकों अब हमारी और से एक विनंती है। तुम किसीको

भी एक पत्र भी नहीं लिखते होंगे.... तो भले। पर लिखना। हाँ! यह लेख पढ़ने के बाद सचमुच आपको यह युवान और उसके माता-पिता अनुमोदनीय लगे, तो पत्र अवश्य लिखना।

सुकृत अनुमोदना यह चारित्र जीवन का प्राण है। सम्यगदर्शन का महत्व का आचार है। हम यह भूल जाए तो नुकसान तो है ही, साथ-साथ में अनुमोदना नहीं होने से सुकृत करने वालों के भाव घटते है, सुकृत घटते है - यह भी बड़ा नुकसान ! यदि वर्ष दरम्यान दूसरे पत्र लिखते ही हो, तो कम से कम छोटा पोस्ट कॉर्ड भी सच्चे हृदय से लिखना।

पत्र लिखने हेतु पता : कमलेशभाई शाह, 304, श्रीपाल बिल्डींग नं. 2, बावन जिनालय के बाजु में, देवचंदनगर, भायंदर-वेस्ट, ठाणा - जिला।

2. यह युवान और पांच वर्ष सी.ए. करना चाहता है, वह जिस वातावरण में है, वहां उसका ही बोलबाला है। हमारे वातावरण में आता है, पर उसे पहचानने वाले कम! उसके उत्साह को बढाए ऐसे शब्दों को कहने वाले कम! भाई म. वगैरह कहते है, पर परायों के शब्दों का असर ज्यादा होता है।

यदि आप सभी के पत्र जायेंगे, तो इतने सभी संयमीओं की अनुमोदना को पढकर यह शक्यता पूरी है कि शायद वह सी.ए. पढने का छोड़ दे और फिर उन पांच वर्षो में तो वह कितना पढ़ और पढ़ा सकता है।

पर यह सब आधार तुम्हारी जडबेसलाक, भावभरी अनुमोदना पर निर्भर है। याद रखना : दुष्कृतों की प्रशंसा करनी यह जितना बड़ा पाप है, उससे अधिक योग्य अवसर पर अनुमोदना नहीं करनी वह अधिक बड़ा पाप है। हमको इस पाप का भागीदार नहीं बनना है।

इस लेख को पढ़ने के बाद तुरंत ही आलस किये बिना पत्र अवश्य लिखें, ऐसी विनंती।

3. उपर जो एड्रेस दिया है, वह युवान के पिताजी का नाम है। उनको पता भी नहीं होगा कि मैंने यह सब छपवाया है। बहुत सारे लोगों को एक आदर्श जानने को मिले उसके लिए ही हमने यह आत्मकथा छापी है।

4. 'दूसरे संयमी पत्र लिखने वाले ही है, तो मैं नहीं लिखूंगा तो क्या फर्क पडेगा।'

ऐसा मत विचारना। नहीं तो सुभूम की पालखी के भांति कोई नहीं लिखेगा, तो शासन को प्राप्त एक रत्न को गंवाने का समय आयेगा।

5. पूज्य आचार्य भगवंतों, वडीलों, शासन प्रभावकों, बड़े साध्वीजी भगवंतों इन सभी के पत्रों का ज्यादा असर होता है। इसलिए उन सभी को हमारी विनंती है कि पत्र अवश्य लिखें।

6. यह युवान भले यहाँ पर तैयार हुआ हो, पर वो कोई भी ग्रुप या गच्छ के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। पहले इन समुदाय के संयमीओं को ही पढाना बाद में दूसरो को..... ऐसा बिलकुल नहीं है। उसके लिए तमाम गच्छ, तमाम संयमी उसके आत्मीय है, पूज्य है। हाँ! जहाँ अधिक लाभ दिखता है, वहाँ ज्यादा भोग देते है, वह तो स्वाभाविक है।

7. सामान्यतया हम कोई भी दृष्टांत-प्रसंग आत्मकथा में नामोल्लेख करते नहीं है, फिर भी इस समय संयमीओं को दृढ श्रद्धा बैठे कि इस काल में भी ऐसी पवित्रतम भावना वाले जीते है इसलिए ही युवान का नाम नहीं, पर उसके पिता का नाम, पता दिया है।

8. चार प्रकरण-तीन भाष्य-कर्मग्रंथ - संस्कृत दो बुक-मुक्तावली..... यह सभी साधन ग्रंथ और अष्टक-षोडषक-धर्मबिन्दु - प्रवचनसारोद्धार - पंचाशक - सामाचारी प्रकरण, आठ - बत्रीशी.... वगैरह कठिन, अत्यन्त उपयोगी सर्वोत्तम पदार्थों से भरे ग्रन्थों का अभ्यास इस युवान ने कर लिया है और यह सब पढा भी सकता है और आगे महोपाध्यायजी वगैरह के ग्रंथों को भी पढ रहा है।

9. हालाँकि उन्होंने पढाना अभी शुरु किया है, इसलिए आत्मविश्वास कम हो, वह स्वाभाविक है। हाँ जो ग्रन्थ पढा लिये हों, उसमें आत्मविश्वास आ ही जाता है पर अभी उसे थोडी घबराहट होती है। हमारे तरफ से मिलता आश्वासन और प्रशंसा ''आगे बढ़ो, हम तुम्हारे साथ है।'' यह भाव..... निश्चित इस घोडे को रेस का घोड़ा बनायेंगा ही।

10. अभी तक यह कोई निश्चित स्थान मे पाठशाला में संयमीओं को पढाने जाता है ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, पर वह तैयार हो, सी.ए. छोड़े, तो तुरंत ही ऐसी कुछ व्यवस्था हो सकती है।

11. चातुर्मास दरम्यान किसी स्थान में एक साथ 25-30 साध्वीजी

भगवंत हो और उन्हें यदि ठोस अभ्यास करना हो, तो यह युवान ऐसे स्थानो में पूरा चातुर्मास ही रह जाये। ऐसा शेषकाल में भी बन सकता है। कोई भी महानुभाव स्वयं के निश्रावर्ती साध्वीवृंद को इस तरह पढाना चाहे, तो वे ऊपर के एड्रेस पर संपर्क कर सकते है। पुनः स्पष्ट करते है कि इस युवान के लिए सभी गच्छ समान है।

12. यह युवान कितना सफल होगा ? वह तो भविष्य ही बतायेगा। गीता का सूत्र ध्यान में रखने जैसा है **'कर्मण्येवाधिकाश्स्ते, मा फलेषु कदाचन।'**

13. तेरापंथ समाज की लाडनूं में जैन युनिवर्सिटी है, दिगंबर समाज की भी गुजरात के बाहर बहुत धार्मिक पाठशाला वगैरह चलती है। दूसरी ओर संयमीओं की संख्या पंद्रह हजार के आस-पास होगी ही। उनके अभ्यास के लिए जगह - जगह पर छोटी-बड़ी पाठशाला ही है, पर यदि ऐसे उत्साही, शासन रागी, पाँच-दस युवान मिल जाए तो सिर्फ संयमीओं के लिए एक विराट व्यवस्था हो सकती है, जहाँ कोई भी संयमी ठोस अभ्यास कर सके। यह कार्य मुख्यतया प्रभावक आचार्य भगवंत या विशिष्ट श्रावक ही कर सकते है।

14. इस युवान के पास जिन चार साध्वीजी ने अभ्यास किया है, उनके भी अभिप्राय (श्रमणोपासक युवान के लिए) को यहां छाप रहे है।

अभिप्राय 1 :- जसवंतभाई (बदला हुआ नाम) के पास पंचाशक ग्रन्थ पूर्ण हुआ। बहुत ही अच्छी तरह से ग्रन्थ समझाया। हाँ! शुरुआत में थोड़ा नर्वस रहा, पर तीसरे दिन उन्होंने कहा ''सामाचारी प्रकरण के पाठ में भी शुरुआत के दो दिन सेट होने में गए। वैसे पंचाशक को भी 2-3 दिन सेट होने में लगेंगे।''

वास्तव में हुआ ऐसा कि मुझे फटाफट पाठ पढने की आदत है, और मेरे साथ के साध्वीजी म. शांति से व्यवस्थित पढते है। यह सब उन्होने दो दिन में देखकर, इस तरह हम दोनों के बैंलेस को रखकर पाठ दिया कि हमको कुछ ख्याल भी नहीं आया और इन्टरेस्ट भी अंत तक रहा। यह सब ख्याल अब आया।

अच्छे से अच्छा पढ़ाने के साथ सभी को साथ में लेकर चलने की सूझ बहुत अच्छी है, फिर भी संतोषकारक समाधान ना लगे, तो भी खुला कह देते है कि इसके बारे में कल भाई म. को पूछकर जवाब दूंगा।

कैसी निखालसता !

साहेब !

Bombay के Culture और College के Bold Atmosphere से आए हुए, फिर भी बहुत ही सौम्य और आचार संपन्न है। इससे हम भी निश्चिंत होकर पाठ ले सकते है।

अरे ! उनका गुरूदेव श्री के प्रति सर्म्पण भी कितना है कि उनकी प्रेरणा से साध्वीजी भगवंतो को अध्ययन कराने की शुभ भावना से भव्य भावी Career को Form करते - करते बीच में Break ले लिया? और अधूरे में पूरा सामाचारी ग्रन्थ भले भक्ति से पढाया, पर पंचाशक के वख्त तो मेरे गुरूणी ने Salary के विषय में Force किया। तब भी नम्रता से, मक्कम स्वर से ना कह दिया। इस Generation में इतना समर्पण भाव। और वह भी इतनी हद की निस्पृहता ! It is Just Amazing.

मेरे गुरूणी ने Salary के लिए ऋणमुक्ति की दलील की, तो उन्होंने मुझे कहा कि ''आप In-dependent हो जाओ, Future में अनेकों को इस तरह से पढाओ, इतना मैं आपके पास Expect करता हूँ। I hope, you will follow me.'' और सचमुच मैंने मार्क किया कि पंक्ति के हार्द तक ले जाते है, पर वे कभी पंक्ति नहीं खोलते है? हमको नहीं बैठती है, तो Guide करते है, पर बुलाते है हमारे पास ही? हमको Self-dependent करने की धुन कैसी?

आपके भी हम ऋणी है, आपने जसवंतभाई को इतना तैयार किया, उनको सतत तैयार किया, तभी वे इतनी जल्दी तैयार हो सके।

अंतिम एक विंनती करनी है

ऐसा सुना है कि वे कैरियर के लिए (सी.ए. के क्लास होने से) अब ब्रेक लेने वाले है? सी.ए. के लिए अभी भी 4-5 साल तो देने पड़ेगे, और भविष्य में कोई काम करेंगे तो कितना समय जायेगा? इससे उसका पूरा लाभ साध्वीजी नहीं ले सकेंगे, इतना बड़ा नुकसान कैसे सहन कर सकेंगे?

Instead why don't he accept this Field it Self as

Career ! सिर्फ मेरी तरफ से नहीं पर हमारे सभी साध्वीजी भगवंतो की तरफ से विनंती करती हूँ।

– (पू. सागर समुदाय के साध्वीजी)

(यह साध्वीजी भगवंत इंग्लीश मीडियम में पढे हुए होने से बार-बार उन शब्दो का उपयोग किया है। उसमें कुछ भी बदले बिना वे ही शब्द छापे है। सिर्फ नाम डालना है)

अभिप्राय : 2

पंचमहाव्रतधारी मुनि का सत्संग एक युवान को किस तरह श्रमणोपासक बना सकें उसे बताती यह प्रस्तुत आत्मकथा।

यह कथा सिर्फ पढने - समझने - सुनने के लिए नहीं, परंतु अनुभव के स्तर तक पहुंचने हेतु है। जिस संघ में मेरा चातुर्मास था, वहाँ विशेष कोई अभ्यास का स्कोप नहीं था। परंतु एक महात्मा ने बताया कि जहाँ तुम्हारा चातुर्मास है, वहाँ सुंदर अभ्यास होगा। तुमको अभ्यास में क्या करना है ? मैंने कहा ''पू. हरिभद्रसूरिजी म. का ग्रन्थ पंचाशक अथवा पू. यशोविजयजी म. का ग्रन्थ सामाचारी प्रकरण।'' ऐसे कोई ग्रन्थों का अभ्यास हो, तो बहुत ही आनंद आएगा।

महात्मा ने कहा ''वहाँ एक युवान पढायेगा। ऐसे कठीन ग्रन्थो का भी अभ्यास वह कराते है, इसलिए तुम पढ सकोगे।''

चातुर्मास के प्रवेश के बाद एक सप्ताह में हमारे पंचाशक तथा समाचारी प्रकरण के पाठ प्रस्तुत आत्मकथा के चरित्रनायक के पास शुरु हुए।

मेरे 6 पंचाशक हो चुके थे.... सातवें से उलझन हुई कि पंक्ति किस तरह खुलेगी। परंतु इस भाई ने इतनी सुंदर पद्धति से अभ्यास कराया कि प्रगति होती गई। बहुत सरलता से, सौजन्यता से अभ्यास कराया। साथ में हम अटक जाए तो वे सीधा कहते नहीं, पर दो पाँच मिनट की राह देखते। (उसके बाद भी ना बैठे तो) बाद में सुंदर दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिक के साथ बताते जिससे पदार्थ समझ आ जाता था। बहुत बार तो अनुमान प्रयोग के द्वारा भी समझाकर पदार्थ को ऐदम्पर्यार्थ तक पहुँचाकर हमारे उल्लास को बढाकर, अभ्यास अध्ययन के [illegible]

बरकरार रखकर पढाया।

चार महिने के अभ्यास में बिमारी के सिवाय, कोई छुट्टी नहीं। रविवार को भी पाठ चालू ही रहता।

निखालसता तो इतनी जबरदस्त कि हम कभी वेतन के लिए पूछें तो जवाब मिलता कि ''साहेबजी! यह बात मत करना। आपके ज्ञानार्जन में मैं सहायक बनूँगा तो मुझे लाभ ही है ना।'' इस तरह बात को काट लेते थे। हम कुछ आगे बोल ही नहीं सकते थे।

आज भौतिक ज्ञान के क्षेत्र में मानव जब तेजी से विकास साध रहा है, तब ऐसे ज्ञान-चारित्र संपन्न युवान जिनशासन की संपत्ति है। हम सब के लिए आदर्शभूत है। बस, सुंदर ज्ञानोपासना के द्वारा जिनशासन के श्रमण-श्रमणीओं को स्वाध्याय प्रिय बनाने में स्वयं के सम्यग्ज्ञान का विनियोग करे। संयम को प्राप्त करके स्वश्रेय की साधना करे यही परमात्मा को प्रार्थना।

- (पू. प्रेमभुवनभानुसूरिजी समुदाय के साध्वीजी)

अभिप्राय : 3

चारित्र ग्रहण करने में हीनसत्त्व वाले जीव 'जिन्होनें चारित्र ग्रहण किया है।' वैसे महात्माओं के जीवन की अनुमोदना करके स्वयं के चारित्र मोहनीय को खपाते है। उसमें भी जो स्वयं के ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विविध शास्त्रों का अभ्यास करके, जहाँ - जहाँ महात्माओं को अभ्यास की अनुकूलता नहीं मिलती है, वहाँ-वहाँ पहुँचकर वे संयमीओं के जीवन में एक नयी ज्योत प्रगटाकर उनके जीवन का उत्थान करते है, जिसमें बहुत कर्म निर्जरा भी करते हैं, ऐसे युवानो की आज शासन को बहुत जरुरत है।

ऐसे एक भाई जो तैयार हुए है उनकी अनुमोदना में तो लिखे उतना कम है। हमारे जीवन में जिसने माली का कार्य किया है, हमारे जैसे उगे कोमल पौधों को पानी+खाद रुपी आगम के पदार्थों को समझाकर अध्ययन करने की हमारी हिम्मत को आगे बढाया है। स्वप्न में भी हमको कल्पना नहीं थी कि हम ऐसे शास्त्रों का अभ्यास कर सकेंगे । वैसे पू. महोपाध्यायजी के कठिन ग्रंथों का अभ्यास पहली ही बार ऐसी सरलता से कराकर हमारी हिम्मत बढाई है। कोई भी

पदार्थ ना समझ में आए तो बारबार उसे दृढ करने में उनका उत्साह बहुत बार देखने को मिला।

'फ्री ऑफ चार्ज' से खुद की मेहनत से पढाने वाले ऐसे विरले ही देखने को मिलते है। कभी पढाने में गप्पा-सप्पा या बाहर की बातें नहीं आती। ऐसे युवान को जन्म देनेवाली माता को धन्यवाद! कि जिन्होंने बचपन से ही जिनशासन के प्रति ऐसी खुमारी का दान दिया है।

एक को संयम मार्ग में आगे बढ़ाया और दूसरे को शासन को सौंपा।

धन्य है ऐसी माता को।

- (अन्य दो साध्वीजी भगवंत)

अभिप्राय 4 :

अचानक लेख हाथ में आया। पढा! अहो! देवगुरु-जिनशासन के सच्चे अनुरागी, निस्पृही ऐसे इस युवान श्रावक के पास मेरा अध्ययन हुआ है। अंतर से यह अनुमोदना हुई कि मेरे प्रभु के शासन में कैसे गुणालंकृत व्यक्ति देखने को मिलते है। मैं जब उनके पास अध्ययन करती थी, तब नजरोनजर देखे उनके गुण, उनकी आचार चुस्तता, विनय-विवेक, अत्यन्त शांतिपूर्वक ज्ञानदान करना, देव-गुरु के प्रति उज्जवल कोटि का भक्ति-बहुमान.... देखते ही हृदय खुश हो जाता था। इस काल में ऐसे व्यक्ति बहुत मुश्किल से मिलते है। मिलने के बाद जब 'यह हाथ में से चला जायेगा' ऐसा सुनाई दे, तब कैसी व्यथा होती है, यह तो जो अनुभव करते है, वे ही जान सकते है।

बहुत मर्यादा वाले और दिल खोलकर पढाने वाले ऐसे श्रावक के कितने ही वर्ष यदि व्यवहार के अभ्यास में चले जायेंगे, तो बाद में परिणाम क्या ? कुछ पता नहीं। क्योंकि इस वर्तमानयुग में, भौतिक दुनियां में अंदर उतरने के बाद पुनः वापस आना कठिन है।

मुझे बार-बार एक बात का दुःख रहता, जब बड़े आचार्य भगवंतो को वंदन करने के लिए जाना होता, तब वहाँ अनेक महात्मा अभ्यास करते दिखते तब होता था कि हमको पू. हरिभद्रसूरिजी या पू. उपा. यशोविजयजी म. साहेब के ग्रन्थों का अध्ययन कौन करायेगा ?

परंतु इस युवान श्रावक के कारण यह दुर्लभ अध्ययन भी शक्य बना।

उनके जैसे 5-10 अध्यापक तैयार हो जाए, तो हमारी इच्छापूर्ण होगी, उसके पश्चात् हम आगे अन्य को दे सकेंगे, पर यदि....

लिखते-लिखते एक बात याद आई। एक साध्वीजी का ग्रुप मिला था। उनको अभ्यास करने की बहुत उत्सुकता! परंतु पंडितजी का योग मिलना मुश्किल! और हुआ तो चार - छःमहिने के पगार की चिंता। और मैंने सहज बात की कि जसवंतभाई ने मुझे इस तरह पढाया है, तो उस साध्वीजी की आँख में हर्षाश्रु आ गए। इस काल में बिना मूल्य अभ्यास! वह साध्वीवृंद गद्-गद् हो गए।

(अन्य एक साध्वीजी - पू. कविकुलकीरिट लब्धिसूरिजी) **नोंध :** आत्मकथा छापने से पूर्व इस युवान के पास पढे हुए साध्वीजी को यह लेख पढने हेतु भेजा था और अभिप्राय मंगाया था।)

अहो आनंदं ! अहो आनंदं!

साध्वीजी भगवंतो को निःस्वार्थ भाव से पढाने की वजह से इस श्रमणोपासक की कतिपय महिनों के पूर्व ही चारित्रमोहनीय अंतरायकर्म के नाश से अद्भुत, अविस्मरणी, अकल्पनीय, अनेपक्षणीय भागवति प्रव्रज्या (दीक्षा) हो गई और वे 'नित्य चढते परिणामें' उसे पाल रहे है।

"क्षमा करना : पंडितवर्यो"

(एक मुनिराज का स्वानुभव)

छोटी उम्र में दीक्षा हुई ! पढ़ने का उत्साह भी जोरदार और पढ़ने हेतु क्षयोपशम भी मेरा लाजवाब ! वैसे भी स्कूल में मेरा नंबर पहले तीन में ही आता था। आठवीं तक पढा, पर कभी मैंने मेरा नंबर गंवाया नहीं था। इसलिए ही दीक्षा के बाद पढकर विद्वान बनने की पूरी-पूरी तडप थी।

पर दीक्षा के बाद सबसे पहले झटका तब लगा कि जब मुझे पता चला कि मेरे गुरु विशेष पढ़े हुए नहीं है। संसारीओं की अपेक्षा से वे भले बहुत ज्ञानी थे पर साधु बने हुए ऐसे मुझे तो अधिक से अधिक सामान्य ही अभ्यास करा सकते थे। वे स्वयं इतना ही पढे थे।

मुझे उलझन हुई। मेरा क्षयोपशम, मेरी अभ्यास की तडप यूं ही चली जायेगी।

अलबत्त हमारे समुदाय में बहुत विद्वान है, जो जोरदार अभ्यास करा सकते हैं, पर उसके लिए तो उनके पास, उनकी निश्रा में सतत रहना पड़ता है। और मुझे तो मेरे गुरूजी के साथ चातुर्मास के लिए जाना ही पड़ता था। मेरे गुरूजी अच्छे व्याख्यानकार भी थे, इसलिए वे चातुर्मास करने का छोड़कर किसी विद्वान के पास रह जाए और मुझे विद्वान के पास पढ़ाए यह सब लगभग अशक्य था। संघों का आग्रह, वडीलों की आज्ञा वगैरह प्रबल कारणों से उन्हें स्वतंत्र चातुर्मास ही करना पड़ता। और मैं मेरे गुरूजी का प्रथम शिष्य था। उसके बाद एक शिष्य बना, पर गुरूजी मुझे विद्वान के पास छोड़कर दूसरे शिष्य से चला ले यह भी शक्य नहीं था। मेरे छोटे गुरूभाई सक्षम नहीं थे, स्थिर भी नहीं थे। इसलिए उनके भरोसे गुरूजी स्वतंत्र चातुर्मास कर सकें वैसे नहीं थे। मेरे गुरूजी का सिर्फ आधार मैं ही था इसलिए उनके साथ रहना आवश्यक था।

पर इसके कारण मुझे अभ्यास का नुकसान होने लगा। मेरी बैचेनी बढ़ती गई। अलबत्त मेरे गुरूजी बहुत अच्छे है, संयमी है, तपस्वी है। मेरी बहुत संभाल भी करते है इसलिए मुझे उनके प्रति असद्भाव नहीं हुआ। उन्होंने मुझे संयम की सूक्ष्मतम तालीम देकर मुझे अच्छे से अच्छा आचार संपन्न बनाया। लोक में

प्रशंसित बने ऐसे आचार तो मुझमें एकदम सहज बन गए है.... यह सब उपकार गुरूजी का है और वह मैं कभी भूलूंगा नहीं।

पर मेरी अभ्यास करने की तमन्ना + मेरी तीवप्रज्ञा मुझे अभ्यास की अनुकूलता नहीं होने से बहुत आर्तध्यान कराती थी। अधूरे में पूरा मेरी उम्र के दूसरे साधुओं को अभ्यास करते देखु, सुनने को मिलता तो मुझे बहुत दुःख होता, मेरी नजर के सामने दूसरे साधु स्वयं के विद्वान गुरुवर्यादि के पास दो-तीन घंटे पाठ लेते, रात्रि को पुनरावर्तन करते और ऐसा सब कभी-कभी देखने को मिलता तो स्पष्ट कहूँ तो, मुझे ईर्ष्या होती। ऐसे समय में कभी गुरूजी के प्रति भी द्वेष उत्पन्न होता। 'मैंने इनके बदले इनको मेरे गुरू बनाये होते तो कितना अच्छा होता?' ऐसे-ऐसे विचार भी कभी-कभी आ जाते।

उसमें भी कभी भविष्य के विचार आते ''दस वर्ष बाद भी मैं तो एकदम अनपढ़ ही रहूँगा।'' और मेरे जितने और मुझसे भी छोटे कईं साधु होशियार, लोकप्रिय और वक्ता बनेंगे ? जब कहीं इकट्ठे होंगे तब उनके साथ उनके बहुत शिष्य होंगे, क्योंकि वे होशियार है और मेरे साथ कोई नहीं होगा। मैं उन सबसे पर्याय में बड़ा होऊंगा, तो भी उन सभी के सामने छोटा लगूंगा। उनके पास श्रावकों की लाईन होगी, और मुझे कोई छोटा कार्य कराना होगा, तो भी किसी श्रावक को ढूंढना पड़ेगा। कदम - कदम पर अपमान सहना पडेगा। मुझसे छोटे साधुओं की सभी प्रकार की वैयावच्च उनके शिष्य करेंगे और उन सबके सामने मैं मेरे सभी कार्य अनिच्छा से स्वयं करूंगा।

सुबह-दुपहर को उन विद्वानो के वस्त्रप्रतिलेखनादि में दौडादौडी होगी और उन सभी के सामने मैं मेरा प्रतिलेखन खुद करूंगा।

गोचरी मांडली में उन विद्वानों के आसन-पात्रा उनके शिष्य लायेंगे, उन विद्वानों को गोचरी में आई हुई अच्छी-अच्छी वस्तुओं को वापरने के लिए सभी बहुत-बहुत विनंती करेंगे और उन सबके सामने मुझे स्वयं ही मेरे आसन-पात्रा लेकर आना पडेगा। वह तो ठीक, पर क्रम के अनुसार मुझे गोचरी मिले उसकी राह देखनी पडेगी। मुझे आग्रह करनेवाला कोई नहीं होगा।

उन विद्वानों के वस्त्रों का काप उनके शिष्य 5-7 दिन में निकालेंगे और मैं

मेरा काप स्वयं ही निकालूंगा। काप निकालने के बाद मेरे कपड़े जितने स्वच्छ होंगे इतने स्वच्छ कपड़े तो उन विद्वानों के काप निकालने योग्य होंगे। शिष्य खींच-खींच कर उनके वस्त्रों का काप उत्साह से निकालेंगे! मैं हृदय के खेद के साथ, फिर भी बाहर से फिक्के हास्य के साथ देखता रहूँगा।

रात को हम सभी प्रतिक्रमण के पश्चात् इकट्ठे बैठे होंगे तब उन विद्वानों के शिष्य फटाफट उनका संथारा बिछाकर तैयार करेंगे। मैं सब देखता ही रहूंगा, पर मेरा पुण्य ऐसा नहीं होगा। मुझे तो मीटिंग पूर्ण होने के बाद स्वयं ही मेरा संथारा बिछाना पडेगा, भले मैं वडील हूँ तो भी!

ओ भगवान! मुझे यह सब सहन नहीं होगा। मुझे स्वावलंबी जीवन जीने में कोई तकलीफ नहीं है, पर मेरे सामने दूसरे विद्वानों की, मुझसे छोटे या समान साधुओं की ऐसी अलग-अलग भक्ति देखकर मैं ईर्ष्या से, अपमान से, संकुचितवृत्ति से जल जाऊँगा। मैं शांति से जी नहीं सकूंगा।

मुझे यदि जीना हो, तो मान सभर जीना है, तो मुझे पढ़-लिखकर विद्वान बनना ही रहा। उसके पश्चात् मुझे प्रवचनकार ही बनना रहा, उसके बाद मुझे अनेक शिष्यों का गुरू ही बनना रहा।

बस मेरे मन पर बार-बार ऐसे तुच्छ कक्षा के भावि विचार छा जाते, मैंने मोक्ष के लिए दीक्षा ली है, और मोक्ष के लिए शिष्यों की - प्रवचनों की - व्याख्यान की क्या जरूरत है ? उसमें भी मैं तो सिर्फ और सिर्फ इन भौतिक सुखों की लालसा से ही सब वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए बेसब्र बना था। मुझे जगत में, लोक में महान् दिखना था कि जिस जगत में कभी किसे सच्चा न्याय नहीं मिलता। मुझे कभी-कभी मेरे ऐसे गलत विचारों पर पश्चाताप भी होता, पर इस पश्चाताप से भी अधिक ये गलत विचार लाख गुने बलवान थे। वे बढते ही जा रहे थे। इसलिए ही ''मैं पढ़-लिखकर विद्वान बनुं।'' ऐसी मेरी इच्छा बलवान बनी और मेरी इच्छा पूरी होने में मेरे गुरू ही प्रतिबंधक लगे। इसलिए उनके साथ मेरा मीठा व्यवहार तीखा बन गया। उनकी भक्ति में खामी, उनके सामने जवाब देना, उनकी आज्ञा नहीं माननी.... वगैरह-वगैरह बहुत धीरे-धीरे बढने लगे।

मेरे गुरू विद्वान नही थे पर एकदम स्थिरपरिणामी थे। वे समझ गए कि ''मेरी कोई इच्छा पूरी नहीं हो रही है, उसका यह परिणाम है कि मुझे गुस्सा

है।''

उन्होंने प्रथम तो मेरी इच्छा जानने की कोशिश की। पर उन्हें पता नहीं चला। मैंने भी कभी इस विषय में खुलासा नहीं किया था, इसलिए ही गुरूजी अनुमान भी नहीं लगा सकें। पर एक दिन हम दोनों के बीच में स्पष्ट बातें हो गई। मैंने मेरे अंदर रहा आक्रोश गुरूजी के उपर निकाल दिया, और साथ ही बहुत रोया। गुरूजी की आशातना करके, उनको खेद पहुँचाने के बदले मुझे सख्त आघात लगा था। मैं बिनखानदान तो नहीं था कि ..... पर मैं कर्म के परिस्थिति को पराधीन था।

बस, उसी दिन से गुरूजी ने निर्णय लिया कि ''इसे अच्छे से अच्छे विद्वान पंडितों के पास ही अभ्यास कराना।''

और उसके पश्चात् गुरूजी ऐसे ही स्थानों में शेषकाल और चातुर्मास रहते कि जिन स्थानों में पंडितजी की अच्छी व्यवस्था मिलती। अब मेरा संस्कृत-न्याय काव्यादि का अभ्यास फटाफट आगे बढने लगा। कुछ वर्षों के बाद तो पंडितो की भी जरूरत नहीं रही। अब मैं अपने आप ही फटाफट ढेर सारे ग्रन्थ पढ सकता था।

इस तरह दो-तीन साल बीते, और मेरी इच्छा पूर्ण हुई।
हाँ ! अब मैं अच्छा विद्वान बन चुका था।
अब मैं लोकप्रिय प्रवचनकार बन चुका था।
अब मैं बहुत श्रीमंत श्रावकों के गुरूपद पर स्थापित हो चुका था।
अब मैं कितने शिष्यों के गुरूपद पर स्थापित हो चुका था।
भगवान की कृपा से मेरी तमाम इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी थी।
अब तक की यह बातें सिर्फ भूमिका थी।

मेरा चातुर्मास एक संघ में निश्चित हुआ और योगानुयोग से वहाँ से पाँच मिनिट के रास्ते पर ही आए एक संघ में एक आचार्यदेव का चातुर्मास निश्चित हुआ। उन आचार्यदेव की ख्याति मैंने सुनी थी कि उनके पास योग के ग्रन्थों का बहुत गहरा अभ्यास है। अच्छे-अच्छे विद्वान उनके पास योग के ग्रंथो का अभ्यास करते है। उन ग्रन्थों की पंक्तिओं को खोलना तो उन विद्वानों को भी आता है, पर आचार्यदेव उसमें से कुछ अलौकिक तत्त्व ही बाहर निकालते है।

दे ऐसी अनमोल भेट आचार्यदेव के पास योगग्रन्थ पढने से प्राप्त होती है। हालाँकि कि स्पष्ट कहूँ तो मुझे अब दूसरों के पास जाकर पढना अच्छा नहीं लगता था। मुझे ऐसा ही लगता था कि मुझे सब मिल गया है, अब और कुछ प्राप्त करना मेरे लिए बाकी नहीं था।

सचमुच मुझे कोई आध्यात्मिक विकास साधने की इच्छा ही नहीं थी। रे! मुझे आध्यात्मिक विकास की कमी हीं नहीं दिखती थी, कि मुझे इसकी इच्छा प्रगटे? मैं तो अपने आपको सर्वगुणसंपन्न ही मानता था। इसलिए मुझे उन आचार्यदेव के पास पढने हेतु जाने की कोई भावना ही नहीं थी फिर भी चारों तरफ से उनकी जबरदस्त ख्याति से मुझे कुतूहल हुआ कि 'ऐसा तो वे क्या समझाते होंगे? योग के ग्रन्थ तो मैं भी पढा हूँ। उसमें सब बैठ ही जाता है, कुछ रहस्य हो ऐसा तो नहीं लगता।'

और इसलिए ही उस कुतूहल से प्रेरणा पाकर मैंने निर्णय किया कि इस चातुर्मास में इन आचार्यदेव के पास योग के ग्रन्थों को पढूंगा।

उसके पूर्व मैं चातुर्मास के पहले आचार्यदेव को मिलकर आया। औपचारिक विधि करके कहा कि ''मुझे आपके पास कोई एक योग के ग्रन्थ का अभ्यास करना है। पर्युषण तक तो समय नहीं मिलेगा। यदि आपको समय मिले तो पर्युषण के बाद कोई ग्रन्थ शुरू करेंगे....''

मेरे निवेदन में थोडी उडुंदता भरी थी। फिर भी योगज्ञाता आचार्यदेव के मुख पर की रेखाएँ जरा भी नहीं बदली। उन्होंने उस समय की अपात्रता को और भावी में प्रगट होने वाली पात्रता को देख ही लिया होगा और इसलिए ही उन्होंने तुरंत हाँ कह दी।

पर्युषण के बाद मैंने उनके पास योगबिन्दु ग्रन्थ पढना शुरू किया। मैं निश्चित कहूँगा कि मैंने जितनी उनकी प्रशंका सुनी थी, वह हजारवें भाग की थी। हकीकत में उन्होंने जो रहस्य मेरे आगे खोले, सुनकर मैं आश्चर्य चकित हो गया। मैं स्वयं को अधमाधम मानने लगा, मेरी आत्मा के अनेकानेक दोष मुझे स्पष्ट दिखने लगे। उनके पास पाठ लेते वख्त मैं अनेक बार उनके शब्दों को सुनकर रोता, हाँ! सचमुच आंसुओं के साथ रोता!

पर यह सब बाते अभी नहीं करनी है। मुझे एक अतिगंभीर बात बतानी है,

जो मुझे उनके पास जानने को मिली और जिसके कारण मुझे आह्लादक अनुभव हुआ। मेरी बहुत भूलें सुधर गई।

योग की प्राप्ति के लिए प्राथमिक कक्षा के जो गुण-आचार उपयोगी है, उन सभी का वर्णन इस योगबिन्दु ग्रन्थ में आते है। उसमें एक दिन 'माता-पिता-कलाचार्य एतेषां ज्ञातयस्तथा।' इस गाथा पर विवेचन शुरू किया। इस गाथा का सारांश यह है कि माता, पिता, कलाचार्य तथा उनके स्वजन इन सभी की संभाल करनी। अर्थात् भरणपोषण करना। उनको खाने-पीने की, कपडे की, रहने की कुछ भी मुश्किल हो, तो वह दूर करनी चाहिए। मिथ्यात्वी जीव यह सब करने के द्वारा योग की प्राप्ति कर लेते है अर्थात् धीरे-धीरे सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्राप्ति कर लेते है।

उसमें कलाचार्य यानि शिक्षक ! वर्तमान काल की भाषा में कहें तो स्कूल में इंग्लिश वगैरह पढाने वाले सर, टीचर वगैरह।

उन्होंने लौकिक शिक्षण दिया, मिथ्याज्ञान दिया फिर भी वह ज्ञान लोकव्यवहार में तो उपयोगी है ही। इसलिए वे गिने जाते है। इसलिए उनकी तमाम प्रकार की संभाल करनी चाहिए।

पर यह पदार्थ सुनकर मैं चौंक गया। आचार्यदेव के प्रति शास्त्रकारों के प्रति मुझे संपूर्ण सद्भाव था, इसलिए बात को गलत मानने का प्रश्न ही नहीं था पर किस तरह सच्ची? उसकी जिज्ञासा तो मुझे हुई ही। उस समय मेरे और आचार्यदेव के बीच लंबा संवाद चला। अलबत्त उस समय मैं कहाँ भी विनय-नम्रता-जिज्ञासाभाव चूका नहीं था।

यह संवाद कुछ इस तरह था।

मैं : मिथ्याज्ञान देने वाले शिक्षक की भी संभाल करने का कहा है, और परंपरा से मोक्ष का कारण बताया है इसके पीछे रहस्य क्या है ?

आचार्यदेव : यहाँ माता-पिता की भी संभाल करने को कहा है, उसका क्या रहस्य है? तुम कहोंगे?

मैं : माता-पिता तो उपकारी है, इसलिए उनकी संभाल लेनी तो बराबर है।

आचार्यदेव : उनका क्या उपकार है?

मैं : हमको जन्म दिया, बड़ा किया, सभी तरह से संभाला, यही बड़ा उपकार !

आचार्यदेव : यह सभी तो लौकिक उपकार है, शिक्षक ने भी विद्या देकर लौकिक उपकार तो किया ही है। तो फिर उसकी भी संभाल करनी चाहिए।

मैं : यहाँ जो माता-पिता धर्ममार्ग में जोड़ते है, वैसे सच्चे उपकारी माता-पिता की ही संभाल करने की बात है ऐसा मुझे लगता है। शिक्षक धर्ममार्ग में जोड़ते नहीं है।

आचार्यश्री : ऐसा अर्थ योगबिन्दु की गाथा में या उसकी टीका में नहीं लिखा है। ठाणांगसूत्र में भी माता-पिता को महान उपकारी कहा है, पर वहाँ भी मूल मे या उसकी टीका में ऐसा नहीं कहा है कि जैन धर्म में जो आगे बढाए, वे माता-पिता उपकारी ! और उनकी संभाल करनी। और वह सब गुण तो अजैनों को जैन बनाने वाले गुण है। तो अजैन के माता-पिता उसे जैन धर्म के मार्ग में थोड़े जोडेंगे? लगभग तो अजैनों के माता-पिता स्वयं के संतानों को स्वयं के मिथ्याधर्म के तरफ ही जोडेंगे। इसलिए अजैनों के लिए उपयोगी गुणों में जब माता-पिता की सेवा बताई है, तब समझ ही लेना पड़ता है कि माता-पिता जैनधर्म में जोड़े या न जोड़े तो भी उनकी सेवा करनी वह कर्त्तव्य है।

और दूसरी बात यह कि प्रशमरतिग्रन्थ में स्पष्ट कहा है कि ''माता-पिता के उपकारों का ऋण और गुरू का ऋण चुकाना कठिन है।'' उसमें भी सुगुरू के उपकारों का ऋण चुकाना और ज्यादा कठिन है।

उसका कारण स्पष्ट है कि सुगुरू इहलोक-परलोक दोनों दृष्टि से उपकारी है। अर्थात् माता-पिता लौकिक उपकार करते है, फिर भी आदरणीय है, उस तरह शिक्षक भी लौकिक उपकार करते हुए भी आदरणीय बनते ही है।

मैं : माता-पिता ने जो लौकिक उपकार किया है, उसके कारण लड़का धर्म की आराधना करने में समर्थ बनता है। यदि माता-पिता ने जन्म ना दिया होता तो, बड़े नहीं किये होते तो लड़का किस तरह धर्म की आराधना करता? इसलिए माता-पिता तो परंपरा से लोकोत्तर उपकार भी करते ही है।

आचार्यदेव : इस तरह ही शिक्षक यदि लौकिक उपकार करते है, उसके

कारण विद्यार्थी धर्म की आराधना करने में समर्थ बनते है। तुम ही कहो कि शिक्षक ने हमको गुजराती वगैरह भाषा नहीं सिखायी होती, तो क्या हम धार्मिक पुस्तक पढ सकते ? शास्त्र पढ सकते ? प्रवचन समझ सकते? आज तो जगत में जो पढ़े हुए है, वे ही टिक सकते है इसलिए ही तो माता-पिता लाखों रुपयें खर्च करके भी बच्चों को पढाते है क्योंकि वे जानते है कि संतानों की पूरी जिदंगी का आधार शिक्षण ही है।

तो ऐसे शिक्षण देने वाले भी उपकारी होते है ना ? इसलिए योगबिन्दु में माता-पिता के साथ-साथ शिक्षको की भी संभाल लेने को कहा है। यह एकदम योग्य भी है। पर मुनिवर ! मुझे तो आपको दूसरी बात करनी है जरा ध्यान से सुनिये। आचार्यदेव ने मुझे अधिक सावधान किया। उनके उत्तर से मुझे संतोष हो चुका था। मैं उनकी नयी बात जानने के लिए उत्सुक था।

मुनिवर ! शिक्षकों ने जो कुछ भी शिक्षण दिया है, वह स्वयं की आजीविका चलाने के लिए ! वे कुछ उपकार करने की बुद्धि से नहीं पढाते। वे पैसे लेते है और पढाते है, यदि पैसे ना ले, तो नहीं पढाते। ऐसा अभी ही चल रहा है, ऐसा नहीं। पहले भी अधिकतर तो शिक्षक आजीविका हेतु ही पढाते थे।

ऐसा होते हुए भी उनको उपकारी गिना है ना? उनको खाने-पीने की मुश्किल हो तो उनके घर में भरसक अनाज भर देना, उनके पास संपात्ति ना हो तो उनकी तिजोरियाँ धन से भर देनी चाहिए, उनके पास घर ना हों तो उसकी भी पक्की व्यवस्था करनी, पहनने के लिए कपड़े ना हो तो भी चिंता दूर करनी चाहिए ऐसा श्री हरिभद्रसूरिजी कहते हैं।

यही इस पाठ का सार है।

अधिक आश्चर्य तो यह है कि वे शिक्षक की ही नहीं, पर शिक्षक के माता-पिता-पत्नी-बहन-भाई-लड़का-मामा-काका-मासा वगैरह वगैरह स्वजनों की भी संभाल लेनी चाहिए। अर्थात् शिक्षक को यदि स्वयं के कोई स्वजनों के विषय में चिंता सताती हों, तो वह सब चिंता भी दूर करनी चाहिए।

मेरा सबसे महत्व का प्रश्न यह है यदि मिथ्याज्ञान देने वाले ऐसे लौकिक शिक्षण के लिए इतनी संभाली करने हेतु शास्त्रकार कहते है तो फिर वर्तमान काल में जो गृहस्थ संयमीओं को संयममार्ग में हमेशा के लिए स्थिर करने का एक

ऐतिहासिक कार्य कर रहे है, ऐसे उन गृहस्थ पंडितों की संभाल करने का कार्य साधु-साध्वीओं का कितना?

भले उन पंडितवर्यों ने पढाते वख्त वेतन लिया हो, भले इस तरह उन्होंने मुख्यतया आजीविका हेतु पढाया हों, पर क्या सिर्फ इतने से वे उपकारी नहीं कहलाते? क्या सिर्फ इस कारण से संयमीओं को उनके प्रति का फर्ज खत्म हो जाता है? लौकिकज्ञान देकर इसलोक में स्थिर करने वाले शिक्षक यदि महान ! तो श्रुतज्ञान देकर संयम जीवन में स्थिर करने वाले पंडितवर्य कितने महान?

पुराने जमाने में साधु-साध्वी अपने-अपने गुरूजनों के पास ही पढते। इसलिए उस समय की बात को जाने दो। पर इस जमाने में तो बहुत से साधु-साध्वीओं ने पंडितवर्यों के पास अभ्यास किया है, इस तरह वर्षों तक स्वाध्याय में तल्लीन हुये है, और संयम में स्थिर बने है। वर्षों के बाद विद्वान बनकर आगमादि ग्रन्थ भी पढाते है, स्वयं कल्याण और सेंकडो-हजारों जीवों का कल्याण भी साधते गए। इन सभी विषयों में पंडितवर्यों का कितना भाग है? वह क्या कम कहा जाता है? यदि पंडितजी ने पढाया नहीं होता, तो वे संयमी चौबीस घंटे क्या करते?

आखिर स्वाध्याय के बिना उनके जीवन में अनेक दोष घुस जाते ना? संयम में अस्थिरता आ ही जाती ना? दूसरों को तारने की बात अलग पर वे स्वयं को ही तारने के लिए असमर्थ बन जाते ना? आगमों की बात तो दूर, पर सामान्य ग्रन्थों को पढाना भी कठिन हो जाता ना? तो पूरा ही संयम जीवन निष्फल जाता ना? और फिर अत्यन्त दुर्लभ मानव भव भी धूल में मिल जाता? मनपसंद संसार का किया त्याग निष्फल जाता?

मुनिवर ! मैं मेरी ही बात करूं। खुद मेरे गुरू भी जबरदस्त विद्वान थे। पर मेरी दीक्षा के समय उनकी उम्र बहुत हो गई थी और शासन के कार्य भी उनके बहुत थे, इसलिए वे स्वयं तो मुझे पढ़ा ना सके। फिर भी उन्होंने लाखो रुपये खर्च करके मेरा अभ्यास पंडितजी के पास अच्छे से अच्छा करवाया। वह हुआ तो आज यहाँ तक पहुंचा हूँ। बाकी यदि पंडितजी के पास मेरा अभ्यास नहीं हुआ होता, तो मैं सचमुच अज्ञानी रह जाता। आज जो कुछ भी मिला है, उनकी बदौलत ही।

मैं खुल्ले कान से प्रत्येक अक्षर को सुन रहा था। नहीं ! नहीं ! पी रहा था। खुली आँखों से आचार्यदेव के मुख के भावों को निहार रहा था। उपकारी

पंडितवर्य के प्रति उनके हृदय में कैसा अहोभाव था। वह एकदम स्पष्ट दिख रहा था। वैसे देखा जाए तो मैं भी ऐसा ही था ना? मेरा जो भी विकास हुआ, उन सभी के मूल में पंडितजी का बहुत महत्व का भाग था? गुरूजी ने मेरा दीक्षा के साथ योग किया, पर पंडितजीओं ने मुझे पढा-लिखाकर संयम में स्थिर कर दिया, अपेक्षा से विचार करुं तो ऐसा लगता है कि क्या गुरूजी से भी अधिक पंडितजीओं का उपकार मानूँ ?

आचार्यदेव की वागधारा अस्खलित बह रही थी। मुनिवर ! सहजता से ही मुझे मेरे पंडितजीओं के प्रति कृतज्ञता बढ़ती रहती, वे मेरे उपकारी है, ऐसा मुझे लगता रहता था। उसमें भी जब योगबिन्दु ग्रन्थ पढ़ा, यह गाथा पढी, चिंतन किया तब मेरी दृष्टि एकदम खुल गई। मुझे स्पष्ट लगा कि यदि संसारीओं के लिए शिक्षक उपकारी है उनकी संभाल करनी वह संसारीओं का कर्त्तव्य है, तो मेरे लिए यह श्रुतज्ञान के दाता पंडितवर्य निश्चित उपकारी है। उनकी संभाल करनी वह मेरे लिए बहुत बड़ा कार्य है। भले पढाते समय उन्होंने पैसे लिए होंगे, ज्यादा पगार की अपेक्षा रखी होगी। फिर भी उनके छोटे-छोटे दोषों से उनका उपकार कम नहीं हो जाता ।

एक दिन.....

मेरी इस भावना को सफल करने का अवसर आ पहुंचा। जिस जैनेतर पंडितजी के पास मैंने काव्य-न्यायादि का अभ्यास किया था, अचानक वे ही पंडितजी मेरे उपाश्रय में आ गए । यह बात है आज से तीन वर्ष पुरानी ! उस समय मेरे पढने का समय कभी का पूरा हो चुका था। पंडितजी को देखते ही मैंने उनको स्मित के साथ मीठा आदर दिया। श्रावकों के द्वारा उनका उचित विनय करवाया। परस्पर औपचारिक बातें होने के बाद सहजता से मैंने पूछा कि ''पंडितजी ! अचानक आना कैसे हुआ? पाँच वर्ष के बाद लगभग मिलना हुआ है।''

पंडितजी ने कहा ''बस ! महाराजजी ! आपको मिलने की तमन्ना हो गई। सो मिलने चला आया।''

मैंने श्रावकों को कहा कि ''यह मेरे उपकारी पंडितजी है, उनकी योग्य भक्ति करनी आपका कर्त्तव्य है।''

मेरे प्रति अतिशय बहुमान वाले वह श्रावक उनको घर ले गए, अच्छी से

अच्छी भक्ति की। पर इस बीच खाली समय में मेरा मन विचारों की श्रेणी में चढा। पंडितजी मुझे सिर्फ मिलने के लिऐ 500 कि.मी. दूर से यहाँ आए, चारों तरफ तलाश करके मेरा पता ढूंढकर यहाँ आए उसके पीछे निश्चित कोई कारण होगा ही। इतने वर्षों में नहीं तो आज ही अचानक क्यु?

पंडितजी पुनः आए, मैंने श्रावकों को बिदाई दी और एकांत में पंडितजी को पूछा कि ''पंडितजी ! मेरे लायक कुछ काम है क्या?'' पंडितजी बोले नहीं। ''महाराज ! आपके पास से मुझे क्या काम हो सकता है।''

पर मुझे उन शब्दों में दर्द महसूस हुआ। वे कुछ अपेक्षा के साथ आए है, फिर भी सावधानी से कुछ कहने से हिचकिचा रहे है ऐसा मुझे स्पष्ट लगा। उनके संकोच को दूर करने के लिए मैंने कहा ''देखिए पंडितजी ! आपके मेरे पर जो उपकार है, उसका कर्ज इतना भारी है कि मैं कभी भी वो अदा नहीं कर सकुंगा, फिर भी यदि आपके लिए मुझे कुछ भी काम करने को मिलेगा तो मुझे बहुत ही आनंद होगा। मैं मान लूँगा कि मैंने उपकारी का कर्ज एक अंश भी कम कर लिया.... इसलिए आप बिलकुल संकोच मत रखना। लज्जा छोड़ के मुझे मेरे लायक काम बताना।''

मेरे शब्दों में पूर्ण श्रद्धा थी। उसमें मात्र औपचारिकता नहीं, पर हृदय की मीठास भी थी। पंडितजी का सिर झुक गया। एक-दो मिनिट तो उन्होंने कुछ नहीं बोला। सिर झुकाने से उनका मुख नहीं दिख रहा था। पर अचानक मैं चौंका। उनकी आँखों में से टपकते आँसू मुझे दिखे। मैं कांप गया ''पंडितजी ! आप रो रहे हो?'' मैंने पूछा।

और पंडितजी ने सिर उपर किया। हाँ उनकी आँखे भीगी थी। रुमाल निकालकर उन्होंने आँसू पोंछे।

''महाराजजी ! मैं बहुत बड़ी मुश्किल में फंस गया हूँ। जब मैं आप लोगों को पढाता था तब तो मेरी मासिक आय अच्छी थी। दो लड़के, एक लड़की, मैं और मेरी घरवाली पांच आदमी का निर्वाह हो जाता था, थोडी बचत भी होती थी। मेरा अपना खुद का घर था, इसलिए कोई चिंता नहीं थी।

लेकिन महाराजजी ! आखिर यह संसार है। आप सब ने उसका त्याग किया है, वह बहुत की अच्छा किया है। उसमें सुख कम है, दुःख ज्यादा है।

लड़की की उम्र होने से उसकी शादी में सब बचत चली गई। बड़ा लड़का नौकरी पर लग गया था। उसकी भी शादी करवा दी, शादी के बाद एक दो साल में उसने अपना घर खरीद लिया। उसकी पत्नी हमारे साथ नहीं रहना चाहती थी।

मुझे अपने छोटे लड़के पर विश्वास था। वह हमारी बहुत सेवा करता था। उसने मुझे कहा था ''पिताजी! आप बिलकुल चिंता मत कीजिए। मैं आपको भगवान की तरह मानूँगा। माताजी को मैं भगवती मानकर सेवा करुंगा।''

उसके शब्दों से मुझे संतोष था। लेकिन उसके कपटभाव को मैं पहचान नहीं सका, शादी के बाद भी वह और उसकी पत्नी हम दोनों की अच्छी सेवा करते थे। मेरी पत्नी को उम्र के हिसाब से दम-डायबिटिज आदि रोग हो चुके थे। उम्र के हिसाब से और बीमार पत्नी के कारण भी मेरा पढाने का कार्य लगभग बंद हो चुका था। एक दो ट्यूशन चलते थे। फिर भी छोटे लड़के और उसकी पत्नी के कारण मैं निश्चित था।

लेकिन उसने मुझे धोखा दे दिया।

एकदिन उसने मेरे पास और मेरी पत्नी के पास किसी सरकारी कागज में दस्तखत करवा लिये। तब तो उसने कुछ झुठ बोलकर यह कार्य करवाया था। मुझे बाद में मालूम पड़ा कि उसने मेरा घर अपने नाम पर करवा लिया है। इसलिए ही वह और उसकी पत्नी हम दोनों की सेवा कर रहे थे। जैसे ही उसका कार्य हो चूका, उसने अपनी हलकटाई प्रदर्शित की। दूसरे दिन उसने हम दोनों को कह दिया कि 'देखो! आप दोनों को ज्यादा से ज्यादा दो दिन में यह घर छोड़ना पड़ेगा। आप अब यहाँ नहीं रह सकते।'

मुझे आश्चर्य हुआ ''क्यूं बेटा?'' मैंने पूछा।

''बेटा-बेटा करना बंद करो। न आप मेरे बाप है, न मैं आपका बेटा। मैं आप दोनों को रख नहीं सकता। मेरी ताकत नहीं है। मेरी आय कम है और यह सिर्फ मेरी जवाबदारी नहीं है, बड़े भाई की भी जवाबदारी है। यदि आप अपने आप खुशी से नहीं जायेंगे तो, मुझे धक्के मारकर आपको निकालना पड़ेगा।''

''लेकिन यह घर तो मेरा है।''

''पहले था, अब नहीं है। देखो यह सरकारी कागज।'' उसने मुझे झेरोक्ष कागज दिखलाया। मैं उसकी चालबाजी समझ गया। लेकिन मैं लाचार था। अपने

सगे बेटे के सामने कोर्ट में जाने की हिम्मत नहीं हुई। और वैसे भी मैं कोर्ट कचेरी के मायने में बिलकुल अज्ञानी था। वकील को खरीद ने के लिए पैसे भी मेरे पास नहीं थे।

मैं गम खा गया। दूसरे ही दिन बड़े लड़के के पास जाकर उसको विनंती की ''छोटे ने मुझे दगा दिया है। अब तुम हम दोनों को तुम्हारें यहां रख लो। हम इस उम्र में कहां जायेंगे।''

बड़े ने हंसते-हंसते कहा ''पिताजी ! छोटे ने बहुत गलत किया। आपको तो कोर्ट में जाना चाहिए। लेकिन यह सब आपका कार्य है। मैं तो इसमें नहीं आ सकता। मैं अपने परिवार को संभालू, या इस झंझट में पडू? और रही बात आपको मेरे घर में रखने की। पिताजी ! इतनी महंगाई में मैं आप दोनों का बोझ नहीं सह सकूँगा। यदि आप दोनों का प्रति माह का पूरा खर्च हर पहली तारीख को मुझे दे सकते है, तो एक बड़े लड़के के नाते मैं आपकी सेवा भी कर लूंगा। लेकिन उसके अलावा तो मैं या मेरी पत्नी दोनों ही लाचार है। वैसे भी माताजी को दम-डायबिटिज आदि बहुत रोग है। इस सब में उनकी सेवा करना कोई आसान काम नहीं है।''

मेरे आघात का पार नहीं रहा। आखिर बड़े ने भी मीठी छूरी का कार्य किया था। मैं वापस अपने घर गया। उस दिन नौ बजे छोटा लड़का घर आया, उसने हम दोनों को देखा, वह गुस्से में आ गया। ''आप को अभी ही यह घर खाली करना पडेगा।'' वह बोला, और पलंग पर लेटी हुई, दम से तडपती हुई मेरी पत्नी का हाथ जोर से खींचकर उसे उठाने लगा। मेरी पत्नी चिल्लाई, मैं यह दृश्य देख न सका, आवेश में आकर मैंने छोटे को एक तमाचा लगा दिया। बस, फिर तो क्या होना था, उसका क्रोध आसमान पर पहुंच गया। एक जोरदार धक्का लगा कर उसने मुझे जमीन पर गिरा दिया। ''देख बुढे ! अब मैं तेरी एक भी बात सुनने वाला नहीं हूँ। तूँ इस बुढी को लेकर अभी ही यहाँ से चला जा। वर्ना धक्का लगाकर मुझे तुम दोनों को निकालना पडेगा।'' वह बोला।

मुझे होश आया कि मैंने गंभीर भूल की है। आखिर पूरी सत्ता छोटे लड़के के हाथ में थी। मेरे पास तो कुछ भी नहीं था। अब रात को नौ बजे मैं और मेरी दम से पीड़ित पत्नी कहाँ जायेंगे ? क्या होगा हम दोनों का ? मैं उसके पैर में गिर पड़ा।

''बेटे ! दो-तीन दिन यहाँ हमको रहने दे, तब तक मैं कुछ भी बन्दोबस्त कर लूंगा। अभी तो हम कहाँ जायेंगे?''

लेकिन आज तो वह कुछ भी सुनने वाला नहीं था। उसकी पत्नी दूर खड़ी सब देख रही थी, हस रही थी।

महाराजजी ! हमारे आस-पास के फ्लेट वाले यह सब कोलाहल सुनकर बाहर आ गए थे। और फिर भी बेशरम बनकर मेरे बेटे ने मुझे धक्का लगाकर घर से बाहर निकाल दिया। उसके बाद दमपीडित उसकी माता को भी बाहर निकाला। आस-पास के सज्जनों ने छोटे को कुछ हितशिक्षा देना चाहा, लेकिन ''आप सब अपना काम कीजिए। यह मेरे घर का मामला है। आपको इसमें दखल करने की जरूरत नहीं है। '' ऐसा कहकर उसने घर का दरवाजा बंद कर लिया। संसार का असल स्वरुप मैंने सुना तो था, लेकिन देखा पहली बार ! हमारे पास पहनें हुए कपड़े के अलावा कुछ भी नहीं था। आस-पास के सज्जन भी आखिर में स्वार्थी ही थे। कोई हमें रखने को तैयार नहीं था। सब थोडा बहुत आश्वासन देकर वहां से चले गए।

मेरी पत्नी दम से हांफती जमीन पर बैठी थी। मेरी चिंता का पार नहीं था। बहुत ही सोचने के बाद मैंने निर्णय किया कि ''मैं अंगतमित्र के यहाँ दो दिन ठहर जाऊँ । पत्नी को भी वहाँ रख दूँ, उस दो दिन मे कुछ भी व्यवस्था कर दूँ।''

रीक्षा बुलाकर हम दोनों वहाँ गए। रीक्षा का भाडा भी मित्र के पास से दिलवाया। मित्र को सब बात बतलाई। उसने आश्वासन दिया ''दो-तीन दिन तक आप यहां ठहरिए। लेकिन उससे ज्यादा तो मैं भी आपको नहीं रख सकता। मुझे भी मेरा सारा परिवार संभालना है। उनकी इच्छा विरुद्ध करने में तो मेरे परिवार में झगड़ा हो सकता है।''

उसकी बात सही थी। उस रात को हम दोनों को नींद नहीं आई। दो दिन के बाद क्या? इसकी चिंता का हमारे पास कोई भी समाधान नहीं था। हा ! एक रास्ता दिखा, आत्महत्या का। लेकिन उसके लिए हिम्मत नहीं हुई। आत्महत्या करनी आसान बात नहीं है ना?

महाराजजी ! सारी रात दमपीडित पत्नी को देखकर, अपनी असहायता को सोच कर, भविष्य का विचार करके मैं बहुत रोया।

बहुत सोचने के बाद मुझे आपकी याद आई। जब मैं आपको पढ़ाता था, तब मैंने आपके उदार-स्वभाव का अनुभव किया था। अलबत आप स्वयं निष्परीग्रही है, यह मैं जानता था। लेकिन आपकी ताकत बहुत है, यह भी मैं जानता था। मैंने निर्णय किया कि ''आपके पास जाकर सब बात करूँ।''

सुबह मित्र को बताकर आपका पता लेकर उधार पैसे से टिकट लेकर आपके पास चला आया हूँ।

महाराजजी ! यह है मेरी कहानी !

जब मेरे दो लड़कों ने भी मुझे निकाल दिया, तब आप मुझे सहाय करें ऐसी मुझे अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए और वैसे भी आपकी जवाबदारी भी नहीं है। जब मैं आपको पढाता था, तब तो आपने मुझे पैसे दिये ही थे। फिर भी मैं असहाय बनकर आपके पास आया हूँ। महाराजजी ! अब आप से....'' पंडितजी की दर्दिली दास्तान पूरी हुई। उनका गला रूंध गया था। मेरा तो स्वभाव वैसे भी श्रद्धासभर ! इसलिए मैं तो आँसुओं को रोक नहीं सका। ''पंडितजी ! गलती तो मेरी हो गई, कि आज तक मैंने आपके सामाचार भी नहीं लिये। मेरा फर्ज था कि मेरे परम उपकारी ऐसे आपको कोई तकलीफ ना हो इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। लेकिन मैं यह भूल गया। अब आप चिंता मत कीजिए। मुझे सिर्फ दो घंटे का समय दीजिए। तब तक आप ऊपर के रूम में आराम फरमाइए। मैं आपको बाद में बुलाता हूँ। लेकिन मेरी आप से विनंती है कि आप बिलकुल चिंतामुक्त हो जाइए। आप कल रात सोए नहीं है तो अब निश्चित होकर आराम फरमाइए।''

मैंने उपाश्रय के एक भाई को बुलाकर तुंरत पंडितजी को ऊपर के रूम में आराम करने के लिए भेज दिया। साथ मे संघ के मुख्य श्रावकों को जो मेरे प्रति अतिशय बहुमान वाले थे, उन सभी को बुलाया। दस-पन्द्रह मिनिट में पाँच-सात आगेवान श्रावक हाजिर हो गए।

मैंने पंडितजी की सभी बातें बतायी। मेरे ऊपर किए उपकारों का वर्णन भी किया। शास्त्रों की आज्ञाएँ बताई, श्रावकों का फर्ज बताया, मेरी मर्यादा और मेरी इच्छा भी दर्शाई। फिर भी मेरा आग्रह नहीं है वह भी बताया। पर मेरी आँखों की नमी, वाणी का दर्द, हृदय की पीड़ा ने उन श्रावकों को स्पर्श लिया।

अभी तो मेरी बात पूरी ही नहीं हुई, एक श्रावक ने कहा ''साहेबजी !

आप यदि हमारे लिए भगवान तुल्य हों, तो आपके उपकारी हमारे लिए भी अत्यन्त पूजनीय बन जाते है। उनकी सब जवाबदारी हमारी है। वह पंडितजी जिस शहर में और जिस विस्तार में रहते है, उसी स्थान में मेरा एक अच्छे से अच्छा फ्लेट खाली पड़ा है। हम तो इस तरह इन्वेस्टमेन्ट करते ही है। साहेबजी ! पंडितजी जिस फ्लेट में रहते थे उससे दुगुणी किमत का तो यह फ्लेट होगा ही। वह पूरा फ्लेट मैं उनको देता हूँ। सिर्फ रहने के लिए नहीं, पर ठीक ठाक करके उनकी मालिकी का ही कर देता हूँ। इसलिए उन्हें भविष्य की भी चिंता नहीं रहेगी कि ''मेरा फ्लेट वह भाई पुनः ले लेगा तो?''

इस श्रावक की बात सुनकर मेरी आँखों में हर्ष के आँसु आ गए। मैंने उनकी पीठ थपथपाई। पर वहाँ तो दूसरे श्रावक ने कहा कि ''साहेबजी ! इस भाई ने फ्लेट का लाभ लिया है, तो मुझे दवा का लाभ लेना है। पंडितजी की पत्नी को बहुत दवाईयों की जरूरत पडेगी, डॉक्टरों का भी खर्च होगा। कदाचित् पैसे की तंगी के कारण से पंडितजी दवा-डॉक्टर को टालते होंगे, तो अब यह नहीं होने दूँगा। मेरा दवा का ही बड़ा कार्य है। डॉक्टरों के साथ संपर्क करा देता हूँ उनको भी जितनी दवा की आवश्यकता होगी, उतनी वहाँ से ले लेंगे, उसका एक भी पैसा उनको नहीं देना। वह दुकान वाला मेरे पास से पैसे ले लेगा। वह मेरा खास मित्र है।

दूसरा यह कि एक डॉक्टर मेरा मित्र है। पंडितजी उनके द्वारा बड़े से बड़े डॉक्टर को बताना चाहेंगे तो बता सकेंगे। मैं मेरे मित्र को सूचना कर दूँगा और बड़े डॉक्टर की फिस पंडितजी को नहीं चुकानी होगी, वह सब मैं मेरे मित्र डॉक्टर के द्वारा चुका दूंगा। इसलिए अब उनकी पत्नी की अच्छी से अच्छी सार-संभाल करानी चाहिए। उनका रोग निश्चित ही काबू में आ जायेगा। यह तो उन्होंने पैसे की तंगी के कारण अच्छे डॉक्टर की दवा नहीं ली होगी। बाकी आज दम वगैरह रोगों को काबू में लाना आसान है। दोनों शांति से जी सकेंगे। निरोगी बनकर जी सकेंगे। उनकी पत्नी घर के सभी कार्य भी कर सकेगी।''

वहाँ तो दूसरे श्रावक ने कहा ''साहेबजी ! बड़े-बड़े लाभ तो दे दिये है। पर अब मुझे छोटा लाभ दो। हर महिने रु. 5000 मैं इनको भक्ति के रूप भिजवाऊंगा, जिससे खाने-पीने का पूरा खर्च निकल जाये। काम करने वाले

नौकर को रखना पड़े तो भी रख सकते है।''

चौथे श्रावक ने कहा ''साहेबजी ! सबने लाभ ले लिया है, अब मेरे भाग में तो कुछ रहा ही नहीं। फिर भी इनको फोन नंबर देकर रखूंगा। यह सब अनुकूलता मिलने के बाद भी यदि इन्हें कोई तकलीफ होगी तो मैं सभाल लूँगा।''

मेरे आनंद का पार नहीं रहा। मैं गद्‌गद् हो गया। भक्त श्रावक ने कहा ''साहेबजी ! आपने हमारे कर्मों का भार कितना कम कर दिया है।आपके सामने इसकी तो कोई किमत नहीं है। हमको तो आपके लिए सर्वस्व दे देना चाहिए। उसके बदले तो हम कुछ दे नहीं सके है।''

जिनशासन के ऐसे अनमोल रत्नों को देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ। मैंने तुरंत पंडितजी को नीचे बुलाया। पंडितजी आकर बैठे। मैंने श्रावकों को कहा कि ''तुम ही सब बात कर लो। और सुनो, तुमको हिन्दी बोलनी नहीं जमे, तो गुजराती में बोलना। पंडितजी गुजराती तो समझ सकते है।''

तुंरत पहले श्रावके ने कहा ''पंडितजी ! तुम जहाँ रहते हो, उसी एरिया में मेरा 700 स्के.फीट का फ्लेट है। वह पूरा फ्लेट आपके नाम कर देता हूँ। मुझे इस भक्ति का लाभ दीजिये।''

दूसरे ने कहा ''वहाँ अमुक नाम की जो दवा की दुकान है, उसका मालिक मेरा मित्र है। तुम्हें जो भी दवा चाहिए, वे तमाम दवा वहाँ से ले लीजिये। चाहे जितनी भी मंहगी दवा हों तो भी चिंता नहीं करना। उन सभी का लाभ मुझे ही देना, आपको एक भी पैसा नहीं देना है। मैं उस भाई के साथ आपका संपर्क करा दूँगा। वैसे तो वहाँ एक डॉक्टर है, वह भी मेरा मित्र है। उनके द्वारा आप बड़े डॉक्टर से संपर्क करके इलाज शुरू करा दो। उन सभी का खर्चा मेरा, पर आपकी पत्नी का इलाज बराबर होना चाहिए।''

तीसरे ने कहा ''पंडितजी ! हर महिने की पहली तारीख को रु. 5000 आपके यहाँ पहुँच जायेंगे। यह लाभ आपको मुझे देना है।''

चौथे ने कहा, ''यह मेरा फोन नंबर रखो। इस सभी व्यवस्था के बाद भी कोई तकलीफ पड़े, तो उन सब की जवाबदारी मेरी ! आप सिर्फ मुझे फोन करके बता देना। '' मैंने देखा कि पंडितजी एकदम आश्चर्यचकित हो गए थे। उनके लिए

तो यह सब कल्पनातीत था। वे तो सिर्फ बिन्दु के लिए आए थे और सिन्धु की प्रभावना मिली थी। वे सीधे मेरे पैरों में गिरकर बिलख - बिलखकर रोने लगे। ''साहेबजी! यह आपने क्या कर डाला ? इतना सारा मुझे दे दिया? मैं इसके लायक कहाँ हूँ? महाराजजी! आप मेरे लिए भगवान के स्वरुप में आए हो। आपका उपकार मैं जीवनभर नहीं भूलूंगा। जैनसाधु, जैनधर्म, जैनश्रावकों के लिए मेरा सद्भाव आज लाख गुणा हो गया है। निःस्वार्थ, आप और ये श्रावक कितना भोग दे रहे है।''

मैंने भी पंडितजी का उपकार माना, आश्वासन दिया।

उसी दिन चारों श्रावक पंडितजी के साथ गाड़ी में बैठकर उनके शहर में पहुँचे। फटाफट सभी व्यवस्थाएँ कर ली। किसी भी काम में कमी आने नहीं दी।

वे चारों श्रावक पंडितजी के छोटे लड़के के पास भी गए, श्रीमंत श्रावकों की प्रतिभा ही ऐसी थी कि वह लड़का तो इतने बड़े लोगों को घर आए देखकर चौंक गया। उसके सामने भी चारों ने पंडितजी की प्रशंसा की। उनके लिए की गई व्यवस्थाओं की जानकारी दी, लड़के को उसके कुकृत्य के बदले मीठा फिर भी स्पष्ट भाषा में उपालंभ दिया। छोटा लड़का एकदम हक्का बक्का रह गया। उसे भी खुद की भूल समझ आयी। यह बात बड़े लड़के को भी बतायी। दोनों लड़के परिवार के साथ पंडितजी से माफी मांगने आए, पुनः घर आने की विनंती की, पंडितजी ने माफी तो दे दी, पर अब शांति से रहने के लिए निर्णय को बताकर नए फ्लेट में ही रहे।

मुनिवर! यह मेरा अनुभव है। हर महिने पंडितजी की एक चिट्ठी तो आती है, उसमें जैनधर्म के लिए, साधुओं के लिए खुद के हृदय से प्रगटे बहुमान को बहुत बार व्यक्त करते है। वर्ष में दो बार खुद की पत्नी के साथ रुबरु मिलने भी आ जाते है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उन्होंने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया है। रोज पूजा करते है, और बारह व्रत भी ले लिए है।

उसके पश्चात् तो मुझे भूतकाल में जिन-जिन पंडितजीओं ने थोड़ा-बहुत अभ्यास कराया था, उन सभी के पास श्रावकों को भेजा। उन सभी की छोटी-बड़ी तकलीफें दूर कराई। पर वे श्रावक वापस आकर हरेक जगह की जो-जो रिपोर्ट देते

थे, वह सुनकर मैं दंग रह जाता था। मुझे लगा कि भगवान ने मेरी आँखे खोली है।

मुनिवर ! मैं आपको पूछता हूँ कि आपका बहुत काफी अभ्यास पंडितजी के पास ही हुआ है उस समय आपकी परिस्थिति कैसी थी मुझे पता है। यदि पंडितों के पास आपका जो अभ्यास हुआ है वह नहीं हुआ होता तो.... बोलो यह बात सच्ची है या गलत ? ''बिल्कुल सच्ची !'' मैंने कहा।

''तो आपने उपकारी पंडितजी के लिए कभी भी विचार किया है क्या? उनकी कभी तलाश कराई है? अब तो आप प्रभावक हो, आपका भक्तवर्ग भी है, आप चाहों तो आपके पुराने सभी पंडितजीओं की संभाल ले सकते हो, आपने ऐसा कुछ भी किया है?''

मैं : आपकी बात सच्ची पर हम इस तरह पंडितजीओं की इहलोक संबंधी संभाल करा सकते है? यह शास्त्रीय कही जाती है?

आचार्यदेव : जिस तरह अपवादसे आप उनके पास पढे, और इस तरह वे आपके उपकारी हुए, तो अपवाद रूप ही उनकी संभाल नहीं कर सकते?

हाँ वे समृद्ध हो, सक्षम हो तो यह संभाल करने की कोई जरूरत नहीं हैं। पर फिर भी उनकी भक्ति रूप उचित कार्य तो कर ही सकते है।

वे समृद्ध या सक्षम है या नहीं? उसका हमको ज्यादातर पता नहीं होता। इसलिए ही उसकी पक्की खबर लेनी चाहिए और जरुरत मुजब सब कुछ करने का अपना फर्ज है या नहीं?

हाँ ! अपने पास भक्त वर्ग ना हों, हम इस तरह श्रावकों के पास उचित दानादि कराने हेतु समर्थ नहीं होते, तो यह सब नहीं ही करना है। बलजबरी से श्रावकों के पास यह कार्य कराने ही नहीं है। पर जिसके पास जितनी शक्ति होती है, उसके अनुसार तो दूसरों की संभाल कर सकते है ना?

अधिकतर पंडितजी तो खाते-पीते सुखी होते है। पर उनके पास ऐसी कोई संपत्ती नहीं होती कि जिससे वे बिमारी के, संतानों के शिक्षण का, परिवार में विवाहादि के खर्च का वहन कर सकें। इसलिए उनको खाते-पीते सुखी जानकर उनकी उपेक्षा क्यूं करते है? उनकी इन सभी चिंताओं को दूर करने का उचित प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

हम सभी पंडितजी के लिए यह सब नहीं कर सकते है। पर हम जिनके

पास पढ़े है, उन सभी के लिए तो हम इतना काम कर ही सकते है।

मैं : आपकी बात सच्ची है ही। फिर भी इसमें ऐसा तो नहीं है ना कि यह गुण मिथ्यात्वीओं के लिए है, अपने जैसों के लिए नहीं। अर्थात् सभी की कक्षा अलग - अलग होती है, इसलिए इस योगबिन्दु में बताई हुई बात मिथ्यात्वीजीवों के लिए योग्य होती है, क्योंकि उनको योगमार्ग में प्रवेश कराना है। पर हम सबके लिए यह जरूरी नहीं होता।

जिस तरह श्रावकों के लिए पूजा योग्य है, अपने लिए नहीं.... ऐसी तो विवक्षा उसमें नहीं है ना?

आचार्यदेव : तेरा प्रश्न सही है। पर सब गुणों के लिए यह नियम नहीं है। उदा. से अपुनर्बंधक के लिए एक गुण यह है कि 'ऐ तीव्र भावे पाप न करें'.... तो क्या यह गुण उनके लिए ही है, ऊपर-ऊपर के गुणठाणे वाले के लिए नहीं? उल्टा यही गुण बढता जाता है। ऐसे 'सर्वत्र औचित्यपालन' यह अपुनर्बंधक का गुण है, तो अपने लिए तो यह विशेष से गुणरूप है ही। दुःखी जीवों के प्रति दया यह चरमावर्ती का गुण है, तो अपने लिए तो यह विशेष गुणरूप है ही।

ऐसे माता-पिता, कलाचार्य, पंडितवर्य वगैरह की यथोचित संभाल जिस तरह संसारीओं के लिए उचित है वैसे उचित मर्यादा में रहकर अपने लिए भी वह कर्त्तव्य तो बनता ही है ऐसा मुझे निश्चित लगता है।

और मैंने तो इस विषय के दो प्रसंग भी जाने है।

महोपाध्याय यशोविजयजी प्रवचन दे रहे थे, उस समय उनके शिक्षक पंडित आ गए। उपाध्यायजी ने उनका उचित सत्कार किया और भक्त श्रावकों के द्वारा उनको बहुत अच्छी भेंट दिलाई थी।

यही बात प्रायः हीरसूरिजी के प्रसंग में भी जानने को मिली है।

मेरे पूज्यपाद गुरूदेवश्री भी इस बात को कर्तव्य मानते थे।

मुझे मेरे अनुभव के अनुसार तो निश्चित यह वस्तु उचित लग रही है।

मैंने आचार्यदेव की सभी बातें सुनी, समझी, पर मेरे मन में और भी बहुत सारे प्रश्न उठे थे। मुझे लगा कि जब ऐसे समर्थ सद्गुरु से भेंट हुई ही है, तो अब सभी प्रश्न पूछ ही लूँ। जिससे मन का पूरा कचरा साफ हो जाए।

मैं : आज पंडितजी प्रति घंटे के तीन-चार हजार रुपया मांगते है। दिन के 7 घंटे पढाते है, तो भी महिने के 20 हजार तो मिल ही जाते है। इतनी अच्छी रकम तो भारत में करोडों लोग नहीं कमाते। मध्यमवर्ग के लोंगों में 5-10 हजार के पगार में जीने वाले करोड़ो लोग है। तो हमको इन पंडितजी को पगार कम कराने के लिए समझाना चाहिए ना? इतने पैसे मिलते है, फिर भी उनको संतोष ना हों, तो कैसे चलेगा?

आचार्यदेव : देखो मुनिवर! पंडितजी को संतोष रखना चाहिए यह आदर्श सच्चा! भारत में करोड़ों मध्यमवर्ग के लोगों की भाँति पंडितजी को 10 हजार रुपएँ मिले इस तरह से ही पगार लेना चाहिए। अर्थात् प्रतिदिन एक - एक घंटे पढ़ाने का 1500 का पगार लेना चाहिए, जिससे 7 घंटे पढाए तो 10 हजार मिल जाते है, उसमें सादगी से जी सकते है यह आदर्श भी सच्चा!

पर मुनिवर! सभी आदर्श धरती पर उतरते है क्या? ऐसी अपेक्षा रख सकते है क्या? मैं तुमको ही पूछता हूँ कि हम सभी के लिए वर्तमान में अलग-अलग ढेर सारे आदर्श खड़े है ना? क्या सभी उसे पालते है? मुहपत्ती का उपयोग रखना-ईयासमिति का पालन-रोज आठ घंटे का स्वाध्याय करना.... वगैरह-वगैरह और ऐसा न होने पर भी हम तो साधु के तौर पर सभी अधिकार लेने के लिए तैयार! संघ हमको सभी प्रकार की सुविधा दे ऐसी अपेक्षा! ऐसी सुविधाएँ मिले तो निःशुल्क भोगने की और न मिले तो विरोध करने की भी निःशंक तैयारी! और जब पंडितों की बात आती है, तब ही ''पंडितजीओं को ज्ञान बेचना नहीं चाहिए, पगार मांगना नहीं चाहिए, संतोष वाला जीवन जीना चाहिए।'' वगैरह-वगैरह आदर्शों को आगे करके उन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न ही करते है ना?

बाकी मुनिवर! गलत मत लगाना तो एक बात पूछू? आपने इस चातुर्मास में हर रविवार को अनेक आयोजन कराए है। उसमें लगभग हरेक प्रसंग में संगीतकार को बुलाया। उन सभी को एक दिन के लिए कितने रुपए चुकाए होंगे?

मैं : संगीतकार के भाग में लगभग 2000 तो आते ही है। बड़े संगीतकार हों तो 5-10000 भी ले जाते है। उसके सिवाय उसके साथीदारों को भी देना पड़ता है।

आचार्यदेव : इसका अर्थ यह है कि सामान्य संगीताकार भी महिने के

50-60 हजार तो कमा ही लेते है ना? उसी तरह जो पूजन कराते है, भावना पढ़ाते है.... उनको भी बड़ी-बड़ी रकम देनी (चुकानी) पड़ती है।

वहाँ आपको ऐसा नहीं लगा? कि यह लोग भक्ति बेच रहे है। उनको इतने रुपए नहीं लेने चाहिए....

मैं : वह तो श्रावक ही उनको पैसे देते है।

आचार्यदेव : भले, पर उसमें प्रेरणा किसकी? आपकी ही ना? रे! बहुत बार तो श्रावक ऐसे बड़े खर्चे के लिए बिलकुल तैयार नहीं होते, फिर भी सिर्फ और सिर्फ हमारे आग्रह से ऐसे लाखों रुपये खर्च करते है।

तो हम संगीतकारों के पीछे लाखों रुपये का खर्च करते है। ऐसी प्रेरणा करनी अच्छी लगती है, उसमें कुछ दिक्कत नहीं होती। और साधु-साध्वीजी को पढाने का ठोस कार्य करने वाले पंडितवर्य अधिक रुपये मांगे, उनको अधिक रुपये देने पड़े तो हम ऐसी बाते करते है.... क्या यह सही है?

मैं : अजैन पंडितों को हमें ज्ञान खाते की रकम देनी होती है। ज्ञानखाते का उपयोग कैसे भी थोड़े ही किया जा सकता है? इसलिए जितना कम में हो, उतने कम से निपटाना पड़ता है.... भाव-ताव करना ही पड़ता है ना ?

आचार्यदेव : निश्चित! ज्ञानखाते की रकम का बेकाम तो उपयोग नहीं करना चाहिए, पर पंडितजी की मजबूरी का लाभ लेना और इस तरह उनको कम पैसे देने यह तो उचित नहीं है ना?

संयमी अभ्यास के समय या अभ्यास करने के बाद भी खुद के भक्त श्रावकों, श्रीमंतो, स्वजनों वगैरह के द्वारा पंडितजी की अच्छी से अच्छी संभाल करा सकते है ना? वह तो दुरुपयोग नहीं गिना जाता है ना?

बाकी मुनिवर! वर्तमानकाल में अच्छे से अच्छे पंडितजी अभ्यास कराने का गौण करके पूजन-भावना पढाने के मार्ग पर चढ गए है। उसका कारण क्या? कारण यही कि वहाँ पैसों की बारीश है। कितने तो वर्ष के 5-10-15 लाख रुपये आसानी से कमा लते है। और बहुत यश मिलता है और जब साधु-साध्वीजी को पढाने के काम में पगार जल्दी-लेट चुकायें, माँगना पड़ता है, बार-बार विलंब होता है, अपमान भी होता है.... यह सब देखकर, अनुभव कर पंडितों ने पंडिताई

छोड़कर पूजन भावना का रास्ता अपना लिया।

संयमीओं को अभ्यास कराके, संयम में स्थिर बनाकर पूरी ही श्रमण संस्था को मजबूत बनाकर जिनशासन सेवा करने का एक भव्यातिभव्य कार्य पंडितजी छोड़ने लगे। नये पंडितजी तैयार होते अटकने लगे, उसका कारण क्या? उनकी होती घोर उपेक्षा ही ना? भयंकर महंगाई में ''भविष्य में क्या होगा?'' ऐसी चिंता उनके मन को हिला दे ऐसी ही है ना?

संगीतकारों को कितना सन्मान मिलता है? और पंडितवर्यों को?

अभी तो ऐसी छाप गिर गई है कि पंडितजी यानि दूसरी कोई भी रीत से पैसे नहीं कमा सकते की होशियारी से रहित, इसलिए ही आजीविका के लिए यह लाईन स्वीकारने वाला गरीब इन्सान!

चलो मुनिवर!

आज तो पाठ के समय के उपरांत दूसरा पौना घंटा निकल गया। अभी हम चलते है।

आचार्यदेव ने स्वयं की धारा अटकाई। अलबत मैं तो सुनने से बिलकुल थका नहीं था, फिर भी आचार्यदेव के कहने से वंदनादि करके पुनः अपने स्थान पर आया। उस दिन मेरे मन मे यही विचार आते रहे। ''मुझे पढाने वाले पंडितवर्य मेरे उपकारी है और मुझे उनकी संभाल लेनी ही चाहिए, क्योंकि मैं शक्तिसंपन्न हूँ।'' ऐसी कृतज्ञता का विचार मुझे आज तक नहीं आया था। उल्टा मैंने तो कितनी गंभीर भूल की थी। भूतकाल में बने प्रसंग याद आते है। जल्दी से जल्दी उनकी आलेचना करके पवित्र बनने की भावना भी प्रगटी।

दूसरे दिन पाठ के समय आचार्यदेव के पास पहुँच गया, विनंती की कि आज मुझे पाठ नहीं लेना है, पर मेरे अपराधों की आलोचना करनी है? आचार्यदेव मुझे एकांत में ले गए और मैंने मेरी आलोचना शुरु की।

''आपकी कल की बात सुनकर मुझे मेरी कितनी भूल याद आ गई। उनकी आलोचना लेकर मुझे पवित्र बनना है।''

''मैंने मेरे पंडितजी को छोटी-छोटी बातों में भी बहुत पीडा दी है। कभी पांच मिनिट लेट आते, तो मैं उनको सुना देता कि ''पंडितजी! आप हमें फोगट में नहीं पढाते। पैसे लेकर पढ़ाते हो, इस तरह लेट आओगे तो नहीं चलेगा। आज

लोग ऑफिस वगैरह में एक मिनिट भी लेट नहीं पहुँचते। जो लेट पहुँचते है, उनके पगार को काटते है....इसलिए पंडितजी ! आपको ध्यान रखना चाहिए'' पंडितजी का मुँह लटक गया। उनको यह अपमान सहन नहीं हुआ। पर वे लाचार थे। उस समय उनके पास पाठ कम थे इसलिए यह पाठ छोड़ दे तो उनको नुकसान ही था। वे सभी ट्राफिक का, बिमारी का बहाना करते, तो मैं स्पष्ट कह देता कि इन सब की जवाबदारी हमारी नहीं है।

उस समय पंडितजी सब सुन लेते थे। मैं महिनें में पंडितजी की जितनी गैरहाजिरी होती, उतनी संघ की पेढी पर कह देता और कहता कि इतने दिन का पगार काट लेना।

और सचमुच जब पहले महिन का पगार पंडितजी ने गिना, तब 2700 रुपये ही थे। उन्होंने मेनेजर को पूछा ''इसमें 300 कम है?'' तब मैनेजर ने स्पष्ट भाषा में जवाब दिया कि ''इस महिने में तीन दिन नहीं आए थे ना? इसलिए महाराज साहेब के कहने से पगार काटा है।''

पंडितजी सहम गए। वे सीधे मेरे पास आए। ''साहेब ! घर में लड़की को सख्त बुखार था, उसको डॉक्टर के पास ले जाने आदि कारणों से तीन छूट्टियाँ हुई है। मैंने बिना कारण छुट्टी नहीं ली है।''

पर मैंने उनके आवेश के सामने हंसते-हंसते जवाब दिया ''आपकी लड़की बिमार पड़े या अच्छी हो.... यह सब जवाबदारी हमारी थोडी है? हम तो शुद्ध न्याय करते है। और लड़की बिमार हुई, उन दिनों में तुमने खाया तो है ना? स्नान तो किया था ना? सोए तो हो ना? तो दूसरा तुम सब कर सकते हो, लड़की की बिमारी वहाँ अडचन रूप नहीं बनती, सिर्फ पाठ देने में ही बनती है? यह कैसा ! और फिर भी हमने कहा तुमको जबरदस्ती रखा है, तुमको जाना है तो खुशी से जा सकते हो हम दूसरे पंडितजी को ढूंढ लेंगे।''

अतिक्रूर बनकर मैंने मेरी जुबान चलाई। उस समय पंडितजी के लिए 300 रुपए भी बहुत उपयोगी थे। पर बिचारे वे क्या करें? लाचारी से मौन रहे। उसके बाद भी मुझे पढ़ाया भी सही, पर हमारे बीच सिर्फ एक लाचार ग्राहक और लुच्चे व्यापारी के जैसे संबंध थे। दोनों में से एक को भी परस्पर चाहना नहीं थी।

ओ आचार्यदेव ! ऐसी तो ढेरसारी गलतियाँ मैंने की है।

एक बार तो उस पंडितजी ने खुद का घर खरीदने के लिऐ रकम की जरूरत होने से मुझसे बात कही कि ''आप मुझे लोन के रूप में अमुक रकम दिला सकते हो क्या? अभी मैं भाडे के घर में रहता हूँ। मेरे खुद का घर हो जाए तो बाद में चिंता नहीं रहेगी।''

मैंने धड़ल्ले से जवाब दिया ''पंडितजी ! हम अणगार है, घर के त्यागी है। हम तो घर को घोर पाप मानते है। हम किस तरह किसी को घर दिला सकते है?'' मेरे सचोट शास्त्रीय (!) जवाब के सामने पंडितजी एक अक्षर भी नहीं बोले। एकबार उन्होंने मेरे पास उनकी लड़की की शादी के खर्च के लिए लोन के रूप में पैसों की माँग की। पर तब भी मैंने जडबातोड जवाब दिया था।

''पंडितजी ! ब्रह्मचर्य जैसा कोई उत्तम गुण नहीं है। तुम्हारी लड़की शादी करके अब्रह्म के पाप करेंगी ही। उसका संसार तो बढता ही रहेगा। इन सभी में हम किस तरह सहायक बने? हा ! वह दीक्षा लेने के लिए तैयार हो, तो विचार करेंगे....''

आचार्यदेव ! मुझे निश्चित ऐसा लग रहा है कि मैं विद्वान, प्रभावक, पुण्यशाली भले बना, पर इस ज्ञान ने मेरी आत्मा में गुण नहीं प्रगटाए, मैं रुक्ष ही रह गया, दोषों से भरपूर रहा, इन सभी का कारण यही है कि मैंने मेरे विद्यागुरू पंडितजी का लेश भी विनय बहुमान नहीं किया। उनको एक पगारदार नौकर जैसा मानकर मानो कि एक शेठ के तरीके से पगार देकर उनके पास से काम निकाल रहा हूँ, इस तरह से व्यवहार किया। इन सभी घोर आशातनाओं के कारण मैं श्रुतज्ञान को पचा नहीं सका, गुणवान बन ना सका।

यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप मुझे मिले। आपके द्वारा मेरी बहुत सारी भ्रान्तियाँ टूट गई और उसमें भी कल की आपकी प्रेरणा के बाद तो मेरी विचारधारा में बहुत बदलाव आ गया। आप मुझे मेरे दोषों का प्रायश्चित दे। और मैं संकल्प करता हूँ कि अब तक जिस किसी भी जैन-जैनेतर पंडित के पास पढा हूँ कम से कम उन सभी की तो संभाल लूँगा ही। मुझे बिलकुल जबरदस्ती नहीं करनी है। मेरे भक्त मेरी प्रेरणा पाकर बहुत उत्साह के साथ यह कार्य कर लेंगे। अब तक मैं

संगीतकारों वगैरह के पीछे, चातुर्मास में नये नये अनुष्ठान के पीछे ध्यान देता था। मेरी प्रेरणा से संघ उसके अनुसार पैसे खर्च करते थे। पर अभी मैं सर्वप्रथम इस विषय पर बराबर ध्यान दूँगा। मेरा यह प्रथम कर्त्तव्य समझूँगा। हाँ ! जिद करके कोई भी काम नहीं करुँगा इतना विश्वास रखना। उस दिन मेरी आलोचनादि में ही पाठ का समय बीत गया।

दूसरे दिन मेरे भक्त श्रावकों को इस विषय में सभी बात की, वे इस कार्य को करने में अति उल्लसित हुए। मैंने उनको मुझे पढ़ाने वाले चार पंडितों का नाम, एड्रेस दिया। ''इन चारों पंडितों को दशहरे के दिन बुलाना है। इसके लिए आपको प्रयत्न करना है। एक भी बाकी न रह जाए।'' श्रावकों ने पत्र लिखकर, फोन नंबर मिलाकर फोन के द्वारा चारों पंडितों को खास आमंत्रण दिया। चारों को भारी आश्चर्य हुआ। क्योंकि एक भी पंडितजी के पास मेरा आत्मीयता का संबंध नहीं था। जब भी पंडितो के साथ वियोग हुआ था तब परस्पर अरूचि की लगन थी। इसलिए ही मेरे इस अत्यन्त भावभरे आमंत्रण को सुनकर उनको बहुत आश्चर्य हुआ। और शायद इसलिए ही लगन से नहीं, पर कुतुहल से सभी दशहरे के दिन हाजिर हुए। व्याख्यान पूर्ण होने के बाद चारों पंडितजी, मैं और भक्तश्रावक बैठे थे। मैंने बात शुरु की। ''मैंने आपको यहाँ क्यूं बुलाया है? यह जानने के लिए आप उत्सुक होंगे। तो सबसे पहले उसका ही खुलासा कर लूँ कि आप सभी मेरे उपकारी हो फिर भी मैंने कृतज्ञता बताने के बजाय कृतघ्नता ही बताई थी। बस, उन अपराधों के बदले ही आपके पास क्षमा मांगने के लिऐ मैंने आपको बुलाया है।

आप मुझे उदार हृदय से माफी दोंगे ना?''

बस, मेरा स्वर गद्‌गद् हो गया, आँखे भीग गई। पंडितों के हृदय में हलचल हो गयी, वे भी समझ गये होंगे कि ''यह कल का कंस आज कृष्ण बन चूका है।''

''अभ्यासकाल के दरम्यान मुझे कुछ होश नहीं था। कोई मुझे सच्ची सलाह देनेवाला नहीं मिला। इसलिए ही आपके साथ वर्तन सदा के लिए स्वार्थभरा ही रहा। मैं स्वार्थी बना, निष्ठुर बना, क्रूर बना, आपकी मजबूरी का लाभ लेनेवाला पाखंडी बना मैंने आपको मानसिक रूप से बहुत ही दुःखी किया। यह सब आप

जानते ही हो। इसलिए ज्यादा तो क्या कहूँ? पर आज योगज्ञाता आचार्यदेव के उपदेश से मुझे बहुत ज्ञान मिला, इसलिए आप सभी के साथ क्षमापना करके पवित्र बनने के लिए आपको बुलाया है।

योगबिन्दु ग्रन्थ से जानने को मिला है कि ''लौकिक शिक्षण देनेवाले शिक्षकों की संभाल करनी चाहिए।'' तो आपने मुझे उत्तमकोटि का श्रुतज्ञान दिया है, इसलिए मेरा फर्ज है कि आप सभी की उचित भक्ति करनी चाहिए। मैं खुद तो नहीं कर सकता, पर यह श्रावक तो निश्चित ही कर सकते है। मेरी आपको विनंती है कि यह भक्ति आप स्वीकारना। आपको इसकी जरूरत है या नहीं? उसका मुझे पता नहीं है। जरूरत ना हो तो भी मेरी प्रसन्नता हेतु यह भेंट स्वीकारना। और यदि अधिक जरूरत हो तो निश्चित मुझे एंकात में कहना। यह श्रावक अधिक भक्ति करने के लिए तडप रहे है।'' मेरे शब्द चारों पंडितजी सावधान बनकर सुनते रहे। मेरा वक्तव्य पूरा होते ही मुख्य श्रावक ने चारों पंडितजी को छोटा सा कवर दिया। मैंने उनको खोलकर देखने की प्रेरणा की। इसलिए उन्होंने कवर खोला, अंदर के कागज को बाहर निकालकर पढते ही वे आश्चर्यचकित हो गए ''पाँच लाख का चैक।''

यह तो आपके उपकारों के सामने बूँद समान भी नहीं है। मैंने कहा।

''महाराज साहेब ! यह बूँद नहीं, यह तो आपने मुझे साक्षात मेरा जीवन दे दिया है।'' अचानक ही एक पंडितजी भावावेश में आकर बोलने लगे, उनकी आँखों में गजब की चमक+उत्साह दिख रहा था। मेरा लड़का हृदयरोग से पीड़ित है। डॉक्टरों ने कहा है कि बच तो सकता है, पर ऑपरेशन करके हृदय में सर्जरी करनी पड़ेगी। पर अंदाजन 3.5 लाख रुपये का खर्च होगा।

25 वर्ष के भरयुवान लड़के को बचाना हो, तब बाप के तरीके से मेरा फर्ज क्या? बहुत मेहनत करने के बाद भी 3.5 लाख इकट्ठे करने अशक्य लगे। घर भी भाडे का है, नहीं तो उसे भी बेच दूँ।

कल ही सामाचार मिले थे कि किसी श्रीमंत को किडनी चाहिए, जो देगा उसे बड़ी रकम मिलेगी.... मैं तत्काल श्रीमंतो के पास गया। उसने चार लाख रु. देने को कहा। डॉक्टर ने मुझे चेक किया। मेरी किडनी उस श्रीमंत को बराबर सूट हो

जाए ऐसी ही थी।

महाराज साहेब! चार दिन के बाद ऑपरेशन निश्चित ही है, मैं किडनी देकर जोखम ही कर रहा था, पर लड़के को बचाने के लिए दूसरा करुँ भी क्या?

पर यह आपकी गुरूदक्षिणा! मेरा तो पुनजीर्विन! अभी ऑपरेशन की जरूरत नहीं है। अभी मैंने पैसे लिए नहीं है, इस पाँच लाख से मेरे लड़के की जिंदगी बच जायेगी, मेरी किडनी बच जायेगी। महाराज साहेब! भगवान ने आपको योग्य समय पर सद्बुद्धि दी।''

हर्षाश्रु के साथ पंडितजी बोलते गए और मैं हर्षाश्रु के साथ सुनता रहा। मुझे इस कार्य से बहुत संतोष हुआ।

ओ जिनशासन के श्रमण-श्रमणी रत्नों!

दीक्षा के बाद आप दसवैकालिक सूत्र तो पढ़े होंगे, उसमें विनय नाम का नौवाँ अध्ययन पढ़ा ही होगा। उसमें 'जस्संतिए धम्म पयाइं सिक्खे' यह आपको-तुमको याद ही हो। उसका भावार्थ यह है कि जिसके पास से हम श्रुतज्ञान प्राप्त करते है, उनका पूरी जिदंगी विनय, सत्कार, सन्मान करना।

क्या इस शास्त्राज्ञा को हमें भूल जाना है? हमको श्रुतज्ञान देने वाले पंडितवर्यों की हम सरेआम उपेक्षा करें? क्या यह योग्य है?

यही अध्ययन में कहा है कि ''जगत के लोग लौकिक शिक्षण देने वाले गुरू का अपरंपार उपकार मानते है। उनकी मार-उपालंभ को भी सहन करते है। तो जो गुरू आपको श्रुतज्ञान देते है, आपका हित करते है, उनके लिए आपका फर्ज क्या?''

यह बात हालाँकि कि गुरू के लिए है, पर आज गुरू के बदले पंडितों ने ही श्रुतज्ञान दिया हों तो वे ही उपकारी कहलाते है ना?

आपने पंडितजी के पास अभ्यास करके आपका स्वार्थ साध लिया, पर मेरी प्रेरणा है कि कभी पीछे देखकर उनके जीवन में भी देखना। ऐसा नहीं मान लेना कि ''उन सभी को कोई तकलीफ नहीं है?'' अरे भाई! भीतर में आर्थिक रीत से कितनी उलझनें होती हो, चिंताएं होती हो तो उसमें जरा भी आश्चर्य नहीं है?

आपके परिवार - स्वजन सुखी हो, धार्मिक हो, दानवीर हों तो उनको प्रेरणा करके उनकी संपत्ति के द्वारा इन पंडितों के जीवन में आए आर्थिक प्रोबलम को सुलझाना।

याद रखना कि आपकी बेदरकारी-उपेक्षा के कारण अपने उपकारीयों की आँख में से गिरती आँसू की एक बूँद भी अपने तमाम सुकृतों को डूबा देनेवाले तूफानी महासागर जैसी ताकत रखती है।

उन पंडितजीओं को चिंता होगी कि ''होस्पीटलादि के जंगी खर्च कैसे पूरे होंगे?''

उन पंडितों को चिंता होगी कि ''प्यारे संतानों को आवश्यक महंगा शिक्षण कैसे देंगे?''

उन पंडितों को चिंता होगी कि ''उमर लायक संतानों की शादी के खर्च को कैसे पूरा करना?''

उन पंडितों को चिंता होगी कि ''भयंकर महंगाई में परिवार की खाने-पीने की जरूरत को कैसे पूर्ण करना ?''

उन पंडितों को चिंता होगी कि ''भाडे के घर में अद्धर हृदय के साथ कैसे जीना?''

इन सभी चिंताओं का समाधान करना का हमारा फर्ज है। यदि शक्ति हों तो यह व्यवस्था करके देनी चाहिए।

हाँ! अपने संयम जीवन की मर्यादा हमें चूकनी नहीं है। पर साथ-साथ यह भी ख्याल रखना चाहिए कि ''यह सब तो पाप है'' ऐसा मानना यह भी गलत भ्रम है। यह उत्सर्गमार्ग नहीं हैं, यह निश्चित! पर यह अपवादमार्ग है, यह भी निश्चित! महोपाध्याय यशोविजयजी और जगद्गुरू हीरसूरिजी जैसे महापुरुषों के प्रसंग ही इस विषय में प्रेरणा हेतु पर्याप्त है।

यह मेरी समझ है, फिर भी कुछ गलत हो तो मिच्छामी दुक्कडम् !

मेरी समझ स्पष्ट है कि यदि पंडितों को इस तरह महत्व-प्रोत्साहन मिलेगा तो उनका उत्साह बढ़ेगा। यदि पंडितों का उत्साह बढ़ेगा तो वे सच्चे हृदय, सच्चे दिल से पढायेंगे। यदि पंडितजी इस तरह पढायेंगे, तो संयमीओं को सच्चा-अच्छा

ज्ञान जल्दी प्राप्त होगा, तो सयंमी संयम में अधिक स्थिर बनेंगे, परहितकारक बनेंगे।

संयमी संस्था की और उसके द्वारा जैन संघ की रौनक बदल जायेगी।

लि. हजारों संयमीओं के द्वारा पंडितजीओं का जो कुछ भी अविनयादि हुआ हो, उसकी सभी संयमीओं की तरफ से क्षमापना चाहता-मांगता एक मुनि!

"पुण्यशाली को किस्मत साथ देती है।"

(एक अतिथि का अनोखा भूतकाल)

मुंबई के एक इलाके में एक मध्यम परिवार में मेरा जन्म हुआ था। खान-पान से सुखी थे, पर दूसरी कोई स्मृद्धि नहीं। बड़ी बहन, हम दो भाई, माँ-बाप, पाँच का हमारा परिवार संसार यात्रा में दिन पसार कर रहे थे।

मेरे जीवन में जो विचित्र प्रकार की घटनाएँ घटी है, उनको सबके सामने पेश करने का मन मुझे हुआ इसलिए विरतिदूत को मेरी थोडी घटनाएँ लिखकर भेज रहा हूँ। उसमें मेरी प्रशंसा भी है, पर निश्चित मानना कि उसके पीछे मेरा लेश भी अहंकारभाव नहीं है, सिर्फ और सिर्फ मेरे प्यारे संयमीओं संसारीओं तक मेरा संदेश पहुंचाने का मेरा उद्देश्य है। फिर भी मेरे मन में यह लिखते वख्त थोडा सा भी अहम्भाव प्रगट हुआ हों, तो अंतकरण से क्षमापना मांग लेता हूँ।

उस समय मैं छठी में पढ़ाई करता था। उम्र दस-ग्यारह वर्ष की थी। शाम को पाठशाला पूरी होने के बाद मैं एक मित्र के साथ पाठशाला के बाहर खड़ा था। ''ऐ लड़के ! यह स्थान कहाँ है?'' एक अनजान व्यक्ति ने मुझे प्रश्न किया। हमको पता होने से हमने उस स्थान का रास्ता बताया।

''तू एक काम कर ना ! जरा मेरे साथ आकर मुझे बता देना ? मैं भूल जाऊँगा, उस भाई ने मुझसे कहा।

मैं भोला ! मैंने सहजता से उसकी बात स्वीकार ली और उसे रास्ता बताने के लिए चलने लगा, मित्र को कह दिया कि ''तू खड़े रहना, अभी वापस आ रहा हूँ।''

सौ-दोसौ कदम चलने के बाद रास्ता बता दिया, पर उस भाई ने आग्रह किया कि ''जरा आगे चलकर बता, मैं एकदम नया हूँ, भटक जाऊँगा।''

मुझे उसका आग्रह, मुखाकृति कुछ विचित्र तो लगी, पर तब विवेक करने की मेरी शक्ति नहीं थी। मैं और 200-300 कदम आगे चला, और अचानक एक रीक्षा नजदीक आया। उस भाई ने मेरा मुँह सख्ती से दबा दिया। मैं सामने प्रतिकार करुं, उसके पहले तो 2-3 गुंडे वहाँ आ गए और मुझे रीक्षा में धकेल दिया। रीक्षा जल्दी से आगे बढ़ा।

ये सब एक-दो मिनट में ही बन गया, वह इलाका निर्जन जैसा होने से किसी को कुछ पता नहीं चला। मैं ऐसे तो छोटा, पर मुंबई का पानी पिया था इसलिए समझ ही गया कि ''मेरा अपहरण हुआ है। मुंबई में बच्चों को उठाकर उनके माँ-बाप के पास से पैसे लेने का काम करने वाली बहुत सारी टोलियाँ थी। उसमें से एक टोली के हाथ में फंसा हूँ।''

तीन-चार मिनिट के बाद एक जगह रीक्षा रुकी, वे मुझे लेकर नीचे उतरे, मैं उम्र और ऊँचाई दोनों में छोटा....और मैंने कोई प्रतिकार भी नहीं किया था, इस लिए वे मेरी तरफ से निर्भय थे। इसलिए मेरे हाथ-पैर कुछ भी नहीं बांधे थे। और उनके अड्डे में पहुंच गए थे। चारों तरफ ऊँची दिवाल, उसमें प्रवेश करने के लिए एक दरवाजा। उस दरवाजे के पास उनके लोग बैठे हुए थे। इसलिए यहाँ आया हुआ मेरे जैसा कोई भाग सके, वह शक्य नहीं था।

''ओय लड़के ! तेरे बाप के पास फोन है ना? बोल, उसका नंबर क्या है।'' उनके लीडर ने मुझे पूछा।

मैं कांप गया। ''मेरे पापा को यह लोग हैरान करेंगे, पैसे मांगेगे, पापा को देवा (उधार) करके पैसे देने पड़ेंगे, नहीं तो ये मुझे मार डालेंगे। यह सभी जल्लाद जैसे है, उनको किसी पर दया नहीं आती, मेरे जैसे छोटे बच्चे पर भी नहीं।''

मेरे विचार चल रहे थे। उसमें मैंने जवाब नहीं दिया, इसलिए उस गेंगलीडर ने मुझे एक थप्पड़ मारा। हाथ में चाकू लेकर मुझसे कहा ''बोल क्या है नंबर? वरना काट डालूँगा।''

पोपट की भांति मैंने नंबर कह दिए।

उस खूंखार व्यक्ति ने मेरे सामने ही पापा को फोन किया। पापा का घर आकर खाना खाने का वह समय ! पूरे दिन का भार-थकान लेकर घर आते है, उसमें यह नयी उपाधि आई। ''देखो ! तुम्हारा बेटा हमारे कब्जे में है। यदि विश्वास ना हो तो लो उसके साथ बात करों....'' कहकर मुझे फोन दिया।

''पापा, पापा !'' मैं रोने जैसा हो गया, यह लोग मुझे पाठशाला के बाहर से उठाकर ले आए। और लीडर ने फोन खींच लिया।

''क्या चाहिए आपको? देखो, मेरे लड़के को कुछ मत करना। ''पीक्चर में जो डायलॉग होते है। वही आज मेरे सामने चल रहे थे।

''हम तुमको दो घंटे की मोहलत देते है। उस वक्त तक तुम एक लाख रुपये लेकर इस पत्ते पर पहुँच जाना। तुम्हें तुम्हारा बेटा वापस मिल जायेगा। लेकिन याद रखना यदि दो घंटे के अंदर तुम नहीं पहुँचे, यदि पुलिस को बात कर दी, तो तेरे लड़के के टुकडे तेरे घर पर पहुँच जायेंगे।''

और धडाक से लीडर ने फोन कट कर दिया। मुझे देखकर हँसने लगा। बाद में सभी थोड़े दूर जाकर गप्पे लगाने लगे।

पापा दो घंटे में किस तरह एक लाख रुपये इकट्ठे करेंगे। आज से 13-14 वर्ष पहले का यह प्रसंग ! तभी एक लाख यानि कितने? और पापा कोई भी हिसाब से यह रकम नहीं चुका सकेंगे। हाँ ! कोई दानवीर दे, सहाय करें तो शक्य बनेंगे..... पर दो घंटे में कैसे शक्य बनेगा? पापा की बात पर इतना जल्दी कौन भरोसा करेगा? किसी से भीख मांगकर लाए, तो भी वे चुकाने में पूरी जिंदगी ही बर्बाद हो जायेगी। मेरे निमित्त से पूरा परिवार हैरान-परेशान होगा। मुझे रोना आ गया। मम्मी-पापा कितनी चिंता में होंगे? इस विचार से मैं बहुत दुःखी हुआ। इस दुःख से ही मुझे एक साहसिक विचार सूझा। ''मैं यहाँ से भाग जाऊँ तो? '' विचार तो आया, पर एक ही मिनिट में पिघल गया। चारों तरफ दिवाल, और एक तरफ दरवाजा, उसके निकट ही सभी खड़े वे खूंखार लोग।

मैं निराश हो गया। पर पुनः आशा जगी कि ''यहाँ से यह दिवाल कूदकर बाहर निकल जाऊँ तो?''

मैंनें खड़े खड़े ही चारों तरफ नजर दौड़ाई, मेरी ऊँचाई से दिवाल दुगुणी तो कम से कम होगी। इतना कैसे चढूँगा? कुर्सी-टेबल मिले, तो उसके उपर पैर रखकर चढ़ सकता था, पर वह सब कहाँ था? अगर हो और वह लेकर रखने जाऊँ, तो उसमें तो मेरी नजर के सामने रहे गुंडे तुरंत मेरे पास दौड़ कर आयेंगे, पकड़ लेंगे, बाद में मेरी हालत खराब कर देंगे।

एक तरफ विचार चालू, दूसरी ओर चारों तरफ नजर भी चालू। वहाँ एक जगह ऐसा लगा कि ''दिवाल में थोड़े उपर के भाग में ईंट का टुकडा बाहर निकल गया है।'' मुझमें उत्साह जगा। वहाँ एक बार पैर रखकर मैं उपर हो जाऊँ, एकबार ऊपर चढ जाऊँ, तो उस तरफ सीधी छलांग ही मारनी रहेगी। उसमें लगेगी, हड्डी टूटेगी..... वह भी शक्यता ! गुंडे मुझे दिवाल की ओर दौड़ता देखेंगे तो वे मेरे पीछे

दौड़ेंगे ही। यदि मैं उपर चढ़ने, छलांग मारने में चूका तो बात पूरी ! मेरे बारह बज जायेंगे।

भले, मुझे यह हिम्मत तो करनी ही है। मेरे मम्मी-पापा को लाख रुपये के उधार में उतारना नहीं है। साहस करना पड़ेगा।

मैंने विचार किया, एक बार चारों तरफ नजर की, दिवाल 50 कदम दूर थी। मैं जैसे दोडूँगा वैसे तुरंत ही गुंडो की नजर भी मेरी तरफ आयेगी। यह भी मुझे ख्याल था और निश्चित निर्णय लेकर मैं दिवाल की तरफ दौड़ा। जैसा मुझे दौड़ता देखा कि तुरंत दो गुंडे मेरे पीछे दौड़े, मुझे पकड़ने के लिए।

पर मेरा भाग्य जी रहा था, मेरा भविष्य उज्जवल था। मैं इस ही भव में चारित्र-धर्म का आराधक बनने वाला था। वह पुण्य मेरी सहाय में आया। मेरा गणित सही निकला, जो इंट का भाग जिस स्थान से बाहर निकला था, उस स्थान पर पैर रखकर, झटके से उपर चढ गया..... एक सेकेंड पीछे देखा, गुंडे दौड़ते दिखे, कटोकट का समय था। मैंने आगे नजर की ''पैर टूट जायेगा?'' यह भय एक सेकेंड के लिए आया, और दूसरी ही सेकेंड पीछे दौड़ते आते यमराजों को देखकर मैंने नीचे छलाँग लगाई, दौड़ा.....

भारी शरीर के कारण गुंडो को चढने में देर लगी। छलाँग लगाने का साहस भी बड़ी मुश्किल से किया। बाद में मेरे पीछे दौड़े। पर आज मैंने केसरिया कर लिया था। और उमर छोटी और पतला शरीर होने से और स्कूल में प्रथम दौड़वीर होने से तथा मौत का भय होने से इतना फास्ट दौड़ा की वे मुझे पकड़ ना सके। निर्जन ऐरीया को पसार करके मैं लोगों की बस्ती वाले स्थान में आ गया, तो भी गुंडे पीछे दिख रहे थे। पर अब मेरा भय चला गया था। क्योंकि अब वे मेरा कुछ भी नहीं कर सकते थे और मुझे लगा कि वे धीमें पड़ गये थे, और उन्होंने आशा भी छोड़ दी थी। और सचमुच वैसा ही था।

पाठशाला के पास पहुँचा, तब मेरे तीन - चार मित्र बातें करते वहाँ ही खड़े थे। मुझे हांफता, हांफता, दौड़ता आते देखकर पूछा ''क्यूं ! क्या हुआ? इतना क्यूं दौड रहा है?''

''यह सब बाद में कहूँगा, पहले मुझे तात्कालिक घर जाना पड़ेगा।''

''पापा-मम्मी....'' चिल्लाते चिल्लाते मैंने घर में प्रवेश किया।

में थे। लाख रुपये किस तरह इकट्ठे करे? उसकी चिंता में थे। मुझे देखकर आश्चर्यचकित हुए। मम्मी ने मुझे बाहों में ले लिया। ''बेटा! तू किस तरह बच गया?''

दिवाल के उपर चढने में, नीचे कुदने में मुझे लगा था, छिल गया था... वह सब देखकर ऐसे तो कोई भी मम्मी घबरा जाती है, पर आज कि स्थिति ऐसी थी कि मम्मी घबराने के बदले मुझे देखकर अत्यन्त खुश हुई। बहुत रोने लगी। पापा की आँखें भी हमारे मिलन को देखकर नम हो गई थी।

हा! मैं बच गया! मेरी हिम्मत से! नहीं! मेरे पुण्य से! पूर्वभव की कोई आराधना ही मुझे सहायक बनी, मुझे बचा लिया। हालाँकि कि अभी धर्म का, प्रभु का प्रभाव मानने जितनी सद्‌बुद्धि मेरे पास नहीं थी, फिर भी जैनधर्म की खुमारी गजब की थी। कोई जैनधर्म के लिए थोडा भी हल्का बोले, तो मुझसे सहन नहीं होता था। मुझे गुस्सा आ जाता था। बाद में मैं सामने कौन है? वह भी भूल जाता। यह सच है ? यह गलत है ? यह तो मुझे पता नहीं है, पर मुझे तो उसके बहुत अनुभव हुए है। उस जिनशासन की खुमारी से ऐसा प्रचंड पुण्य उदय में आ जाता कि मेरी सभी प्रवृत्ति सही पड़ती थी।

मैं गुजराती मीडियम में पढता था। उस समय सातवीं क्लास में था। मेरे क्लास टीचर को मुझ पर अच्छा स्नेह था। पर प्रीन्सीपल की पत्नी की जिसको सभी मेडम कहते, उनको मैं पसंद नहीं आता था। उसका कारण सिर्फ इतना कि पर्युषण में मैंने 64 प्रहरी पौषध करने की इजातत माँगी थी। मेडम ने मुझे पूछा कि ''आठ-आठ दिन की छुट्टी कैसे मिलेगी? कितनी पढ़ाई बिगड़ेगी? यह कैसा धर्म तुम्हारा।'' पर मैंने जिद पकड़ रखी थी। ''मैं मेरी पढ़ाई को पीछे से कवर कर लूँगा। और मेरा वर्ष बिगड़े या सुधरे यह तो मुझे देखना है।''

मैं उनकी बात ना मानू, इसलिए उनको गुस्सा आ जाएँ यह स्वाभाविक है। वे थे बहुत अहंकारी! स्कूल में बहुत बड़ी सत्ता! तुमाखी वाले! सभी उनसे घबराते थे, इसलिए ही सभी उनकी बात तुरंत ही मान लेते थे। उसमें मेरे जैसा ना कहें तो उनको गुस्सा आयेगा ही, वह स्वाभाविक है।

पर मैं यह सब परवाह नहीं करता था, मैंने तो आठ दिन की छुट्टी ली, पौषध किए। आठ दिन की मेरी गैरहाजिरी को देखकर वे क्रोधित हुए। क्योंकि मैंने उनकी

इच्छा के विरुद्ध निर्णय लिया था।

नौवें दिन पारणे के बाद दसवें दिन स्कूल में गया। और मुझे देखकर वह जल उठी। इतने दिन का गुस्सा मुझ पर निकालने के लिए जैनधर्म के विरुद्ध सभी के बीच में जैसे-तैसे बोलने लगी। ''यह जैन बस सिर्फ पैसे ही खर्चते है, खाते-पीते है, पढने को साइड मे रखकर धरम के पूछडे बनकर जीते है।''

वह जैसे-जैसे बोलती गयी वैसे-वैसे मेरा आवेश बढ़ता गया, पर मैं क्या करूँ? मैं सिर्फ 12-13 साल का विद्यार्थी ! वह 45 वर्ष से पूरी स्कूल की मेडम ! प्रिन्सीपल की पत्नी ! फिर भी मेरा मिजाज बिगड़ गया, मैंनें हिम्मत करके जवाब दिया कि ''मेडम ! आपको मुझे जो कहना है वह कहो, पर मेरे धर्म की विरुद्ध में कुछ बोलना नहीं। मुझसे सहन नहीं होगा।'' यह भी उनका घोर अपमान था। उनके सामने आज तक सभी 'हाँ जी' कहने वाले ही आये थे। और आज मेरे जैसे छोटे विद्यार्थी ने सिर उठाया था।

वे भी गुस्से हो गयी, ''तू मुझे कौन रोकने वाला? मैं जो चाहूँगी वह बोलुंगी। तेरे जैसा लडका बोलकर जाये, वह मैं कभी सहन नहीं करूँगी।''

उस दिन तो तप्त अग्नि के साथ सभी घर गए, पर मुझे लगा कि यह बात इतने से अटकने वाली नहीं है। मेडम स्वयं के अपमान का बदला लेगी ही, मुझे निश्चित हैरान करेगी।

और मेरी धारणा सही निकली। दूसरे दिन क्लास में पहुँचा, मैं बेंच पर बैठा। क्लास टीचर का पीरियड शुरु हुआ, वहाँ नीचे से चपरासी आया ''संभव (नाम बदला है) कौन है? मेडम नीचे बुला रही है।''

सभी ने मेरे सामने देखा, मुझे लगा कि आज मुझ पर बड़ी आफत आनेवाली है। मैंने कह दिया कि ''मैं नहीं आऊंगा।''

चपरासी तो स्तब्ध हो गया। कोई लड़का इस तरह से जवाब दे?

क्लास टीचर भी घबरा गये। उनको मुझ पर स्नेह था। ''संभव ! तू जाकर आ। माफी माँग ले।''

''नहीं ! टीचर ! मैं नहीं जाऊँगा। मैंने कुछ गलत नहीं किया है, तो फिर मुझे क्यूं माफी मांगनी?''

''देख, इससे तेरा भविष्य बिगडेगा, मेडम तुझ पर कडक कार्यवाही

करेंगी।''

''उनको जो करना है वह करें.....''

हमारे बीच रकझक चली, मेरे मित्र भी समझाने लगे। सभी समझते थे कि मैं सच्चा हूँ, पर मेडम के साथ पंगा लेकर फालतू नुकसान क्यूं करना? यही सबका विचार था! उनकी दृष्टि से वे सच्चे थे। पर मेरा सत्व, मेरी खुमारी मुझे झुकने नहीं दे रही थी। इन सभी में बहुत समय लगा, चपरासी नीचे ना पहुँचा। इसलिए क्रोधित हुए मेडम सीधे उपर आ गयी, मेरी क्लास में प्रवेश किया। सभी उनको आदर देने के लिए खड़े हो गए, पर अब मैं दृढ़ बन गया था। ''ऐसे व्यक्तिओं को बिलकुल दाद नहीं देनी।'' और मैं अकेला बैठा रहा।

''संभव! खड़े हो जा...'' टीचर ने मुझे प्रेरणा की।

''यह खड़ा नहीं होगा, यह जैन सभी ऐसे ही है।'' मैं कुछ भी बोलु, उसके पहले तो मेडम धमधमाट बोलने लगे, वे सीधे मेरे पास आयी। पूरा क्लास स्तब्ध बन गया। इन लोगों को इतना विनय भी सिखाने में नहीं आता कि ''शिक्षक जब आते है तब खड़े हो जाना चाहिए। इन लोगों का धर्म ऐसी उद्धता, स्वच्छंदता ही सिखाते है।''

उस मेडम के आग जैसे शब्दों ने मेरे अंतर को जला दिया, मेरा क्रोध बढ़ गया, ''मेरे धर्म के लिए ऐसा बोल रही है और मुझे सुनते रहना.....''

और मेरा गुस्सा आसमान को छू गया। कल्पना भी ना हो सकें ऐसा मैंने निर्णय लिया। ''निर्णय लिया'' ऐसा नहीं पर सीधा अमल में ही ले लिया।

अचानक खड़े होकर मेडम या दूसरे सभी कुछ विचारे या समझे, उसके पहले तो मैंने मेडम के गाल पर जोरदार थप्पड़ लगा दी।

इतनी जोरदार थी कि मेडम का चश्मा उछलकर 5-7 फूट दूर जाकर गिरा। पूरी क्लास में झटके के साथ सभी अपनी जगह पर खड़े हो गये। मैं स्वयं गुस्से से कांप रहा था, मेडम के गाल पर चार उंगलियां छप गई थी।

''अब क्या परिणाम आयेगा?'' उसकी सिर्फ कल्पना ही करनी थी।

मेडम अचंभित हो गयी। उनकी जिदंगी में यह प्रथम प्रसंग था, एक अक्षर भी बोले बिना वे तुरंत नीचे उतर गये। पर उनके मौन में रहे हुए क्रोध का सभी को अनुभव हुआ।

''संभव ! तूने यह क्या किया?'' टीचर सिर्फ इतना ही बोल सकी।

मेरे मित्रों ने मुझे घेर लिया, पर क्या बोलना? किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था। मैंने अपने लिए कुछ नहीं किया, पर जैनशासन के लिये कोई खराब बोले तो कैसे सहन करें। मुझे शायद स्कूल में से निकाले, पर मैं आप सभी को पूछता हूँ। क्या तुम यह सब देखते रहोगें? तुमको धर्म की अवहेलना अच्छी लगेगी?

मेरी आग उगलती भाषा ने सभी में जोश भर दिया। सभी ने देख लिया कि सत्वशाली व्यक्ति के आगे भलभलों को झुकना पड़ता है। मेडम जैसी मेडम की हालत उन्होंने देख ली थी।

''संभव ! तू चिंता मत कर। हम सभी तेरे साथ है। यदि तूझे टी.सी. दी गयी, तो हम सर्व एक साथ स्कूल छोड़ देंगे, हम सभी अपने धर्म की अपभ्राजना-अवहेलना नहीं सहेंगे।'' सभी जैन मित्र एक ही आवाज से बोले। (मेरे क्लास में बहुत सारे जैन थे। सभी मेरे मित्र थे, जैनेतरों को भी मैंने समझाया कि यह निंदा कल आपके धर्म की भी हो सकती है।)

एक के बाद एक पिरीयड पसार होते गए, और अचानक एक चालू पिरीयड में मुझे आमंत्रण अया कि ''संभव ! कौन है? प्रिन्सिपल अभी बुला रहे है।'' हमको जिसका अंदाज था, वही बन रहा था। पर इस समय मैं अकेला नहीं मेरे साथ मेरे तमाम मित्र, लगभग पूरी क्लास नीचे आई थी। प्रिन्सीपल ने सभी का शोर सुना, चपरासी के द्वारा सभी के विद्रोह की बात भी जान ली। सभी ही विद्यार्थी संभव के पक्ष में है। यह जान लिया।

प्रिन्सीपल शान्त, अनुभवी, न्यायी थे। मुझे अकेले में अंदर बुलाकर पूछा।

''संभव ! तूने मेडम को थप्पड मारा?''

''हाँ !''

''यह बड़ा गुनाह है, पता है?''

''हाँ ! पर शुरुआत मैंने नहीं की, मेडम ने बड़ी भूल की है। इसलिए मुझे थप्पड मारना पड़ा।''

''क्या भूल की?''

''यह आप मेडम को ही पूछो ना? वह मेरे धर्म के लिए जैसे-तैसे बोली, क्या यह योग्य है? मेरी कोई भूल हो तो मुझे उपालंभ दो, पर मेरी कोई भूल नहीं है,

मुझे उपालंभ देने के बजाय मेरे धर्म को गाली दे, वह मुझसे सहन नहीं होता....।''

प्रिन्सीपल खुद की पत्नी के मिजाजी स्वभाव को जानते थे। अनेक बार परोक्ष रीत से उनकी शिकायत भी सुनी थी। अब तक कोई स्पष्ट कहने वाला नहीं मिला था, पर मेरी सरल मन की रजुआत की उनको असर हुई। मेरे सामने ही मेडम को बुलाकर पूछ लिया कि तूने ऐसा-ऐसा बोला था? मेडम उलझन में पड़ी, सभी के हाजरी में बोले थे। इसलिए किस तरह ना कहें? उन्होंने बात स्वीकार ली।

''यह गलत कहा जाता है, हमको किसी के धर्म की निंदा करके उनकी भावना को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए।''

''और देखो संभव ! मेडम की भूल हो, तो भी इस तरह से चांटा मारना गंभीर भूल कहलाती है। तुझे मुझे कहना चाहिए, तूं स्वयं ही ऐसा कदम उठा ले, यह उचित नहीं है। मेडम की इज्जत करनी चाहिए। चल, माफी मांग ले, और मेडम अभी ऐसा नहीं करेगी उसकी जवाबदारी मेरी.....।''

मैंने पैरो में गिरकर माफी माँग ली। ''मेरी भूल हो गई मेडम ! मैंने आपका अपमान किया....।'' मेडम वैसे तो एक स्त्री ही थी, स्नेहशील थी, अहंकार को ठेस पहुंची इसलिए क्रोधित सिंहनी जैसी बन गयी। आज अहंकार की पुष्टि हुई, इसलिए भूल स्वभाव प्रगट हुआ।

''देख, अब इसे तेरा लड़का समझकर माफी दे दे, कितना अच्छा विनयी लड़का है।'' प्रिन्सीपल ने हंसते-हंसते वातावरण को हल्का बना दिया।

मेडम ने मेरे सर पर हाथ रखा, ''बेटा ! मेरी भूल हो गई....'' इतना बोलते ही उनकी आँखो में आँसू आ गये। ''चल, पूरी क्लास के सामने तुझसे माफी माँगती हूँ और ऐसा आगे नहीं करूंगी उसका संकल्प जाहिर करती हूँ।''

मेडम ने कहा, प्रिन्सीपल को खुद की पत्नी के अद्‌भुत परिवर्तन से बहुत ही आनंद हुआ। और सचमुच जब मेडम ने बाहर आकर सभी विद्यार्थियों के सामने स्वयं की भूल कबूल की, मुझसे माफी मांगी, तब सभी की आँखों में आंसू थे। देखा ना? धर्म की श्रद्धा के प्रताप से मुझे कितना फायदा हुआ? कितनी ज्वलंत सफलता मिली? सिर्फ बारह-तेरह वर्ष की उम्र में मैंने ऐसा साहस प्राप्त किया था। और ऐसी सफलताएँ मुझे मिली उसका मुझे भी आश्चर्य था, तो यह पढ़ने वाले आप सभी को यह शंका तो होगी ही कि ''यह सच है या गप्पा?'' पर यह 100

प्रतिशत सच है। हाँ! मैंने मूवी नहीं उतारी है, फोटो नहीं खिंचाये है, तो फिर सबुत तो मैं कैसे दूँ। पर एक साधु के तौर से मैं कह रहा हूँ, लिख रहा हूँ.... मेरे उपर विश्वास रखना।

इस तरह मेरे भावी गुरूजी के परिचय से मैं धर्ममार्ग पर अधिकाधिक आगे बढ़ने लगा। दूसरी ओर मेरे पप्पा का देहांत हुआ, परिवार का आधारस्तंभ टूट गया। पर मेरा वैराग्य मजबूत बनता गया। और पन्द्रह वर्ष की उम्र में मैंने दृढ संकल्प कर लिया ''मुझे दीक्षा लेनी है....।'' अलबत् तब मैं परिवार को आर्थिक सहायकरूप नहीं था, फिर भी मम्मी को तो मुझ पर ही भविष्य की आशा होगी ना? अब तो बड़ी बहन सभी जवाबदारी निभाती थी। पर उसकी भी शादी होने वाली थी, वह ससुराल जाने वाली थी, उसके बाद क्या?

उन सबसे भी अधिक बड़ी बात यह कि माता का वात्सल्य बेटे को दीक्षा देने हेतु किस तरह तैयार हो?

पर मैंने कहा, वैसे मेरा भाग्योदय कदम-कदम पर मेरी सहायता कर रहा था। मेरे गुरूजी ने समझाया और मम्मी - बहन ने मुझे कह दिया ''संभव! तू दीक्षा ले ले। यह संसार तो असार है, यह तो हम अभवी है कि हमको दीक्षा की भावना नहीं होती, पर तुझे यह भावना प्रगटी है तो हम तुझे नहीं रोकेंगे। तू सन्मार्ग पर आगे बढ़। आत्मा का कल्याण कर, कुलदीपक बन, शासन दीपक बन....''

मेरा मार्ग खुला हो गया, मम्मी और बहन मेरे लिये कितना भोग दे रहे है। इतना तो मैं समझ सकता था। दोनों को सिर्फ भय इतना था कि ''मेरा क्षयोपशम कम है, तो यह दीक्षा के बाद पढेगा कैसे?'' पर फिर भी, सिर्फ ज्ञान प्राप्ति से ही मोक्ष नहीं है, अनेक योगों के द्वारा जीव आत्मविकास साध सकता है। यह पदार्थ विचारकर उन्होंने मुझे इजातत दी।

मुझे सुंदर अच्छा समुदाय मिला।
मुझे अच्छा विशाल ग्रुप मिला।
मुझे अच्छे सद्गुरू मिले।
दादा गुरूदेव तो सबसे अच्छे मिले।

अंत में पप्पा की गैरहाजिरी में जय बुलाई। वैशाख वद चौथ का दिन नक्की

हुआ। (सवंत 2062)

''संभव ! तेरा दीक्षा जीवन निर्मलतम बने, इसके लिए हम कुलदेवी के पास दर्शन वंदन करने जायेंगे....'' मम्मी ने मुझसे बात की। सौराष्ट्र में चोटीला गाँव के पास बड़ी टेकरी पर आया हुआ चामुंडा माता का मंदिर वही हमारी कुलदेवी का स्थान ! ''मम्मी ! मुझे भगवान, सद्गुरू और जैनधर्म के सिवाय कहाँ पर भी झुकने का मन नहीं होता। मुझे कोई कुलदेवी पर द्वेष नहीं है, पर मैं क्यूं उनको नमस्कार करूँ?'' ''देख संभव ! दीक्षा के बाद पूरी जिदंगी कहाँ कुलदेवी के पास जाना है? तू हमारे संतोष के लिए भी एकबार वहाँ हमारे साथ चल.... हमकों भविष्य का भय ना रहे'' मम्मी ने कहा और उन सबके संतोष के लिए उनके साथ मैं चोटीला पहुँचा। टेकरी चढकर चामुंडा माता के मंदिर में पहुँचा, मम्मी-मामा, बहन सभी ने भाव से नमस्कार किये, श्रीफल चढाया, भंडार पूरा.... यह सब मैं देखता रहा, पर मैंने हाथ नहीं जोड़े और सिर भी नहीं झुकाया। मम्मी घबरा गई और थोडी गुस्सा भी हुई। पर अब मैं मुमुक्षु था, थोड़े ही दिनों का मेहमान था, इसलिए वह गुस्सा तुरंत ही पिघल गया।

''बेटा ! एकबार नमस्कार कर ले ना? प्रार्थना कर ले ना?''

''नहीं ! मम्मी ! अब यह मस्तक झुकेगा सिर्फ भगवान के आगे ! आरजु करेगा सिर्फ प्रभु के सामने।'' मेरी मक्कमता देखकर मम्मी कुछ नहीं बोली। पर वहाँ बैठे सन्यासी मेरे इस वर्तन को देखकर आकुल-व्याकुल हुए ''कौन है यह लड़का? झुकता क्यूं नहीं है?''

मम्मी ने शांति से मेरी दीक्षा की बात की।

''ऐसा? यह जैनसाधु बनने वाला है? तो लड़का ! चल ! इस मंदिर के मुख्य महंत के आशीर्वाद ले ले। हजारों लोग उनकी शरण में जाते है.....''

और सन्यासी पूरे परिवार को 70 वर्ष के, बड़ी दाढीवाले, भयानक दिखते मंहत के पास ले गए। वहाँ भी चामुंडा माता की देरी में बने प्रसंग का पुनरार्वर्तन हुआ। सभी ने महंत के पैरो में प्रणाम किया। मैं अकड़ बनकर खड़ा रहा। मम्मी ने पैर छूने को कहा, मैंने स्पष्ट ना कह दी, मंहत ने यह सब देखा।

''क्यूं भई ! मेरे पैर क्यूं नहीं पड़ रहा?

''महंतजी ! इसने तो माताजी को भी नमस्कार नहीं किया। यह जैनसाधु

बनने वाला है'' उस संन्यासी ने कहा। मंहतजी के मुख पर क्रोध की रेखाएं आई। ''लड़का ! माताजी कोपायमान होगी, तो तेरा सत्यानाश हो जायेगा।'' श्राप जैसी भाषा में महंतजी बोले। मम्मी कांप गई। मैं भी जरा घबराया, पर ऐसे थोड़े ही दब जाऊ?

''माताजी तो करुणावाली होती है, मैं उनका बालक उनको नमस्कार ना करूँ तो थोडे मेरा सत्यानाश करेगी? और यदि ऐसा करें तो माताजी कहलायेगी? वह चंडालण, डाकण, चुडैल ही कहलायेगी ना?'' मैं बोला और मंहतजी भी क्षोभित हो गए। क्या जवाब देना उनको सूझा नहीं। अलबत परिवार वाले तो बहुत घबरा गये थे। मम्मी मुझे रोक रही थी। पर मेरा ध्यान उस तरफ नहीं था।

''पर तूझे क्या दिक्कत है? माताजी को मनरहित नमन करने में?''

''दिक्कत कोई नहीं है। पर मुझे सिर्फ मेरे भगवान और मेरे गुरू पर ही श्रद्धा है, आप सबके ऊपर कोई तिरस्कार नहीं है। फिर भी नमन करने की मुझे जरूरत नहीं है। अच्छा ! अच्छा ! कोई बात नहीं ,जा ! तुझे मेरी शुभेच्छा है।'' 70-75 वर्ष का उम्र में बड़े मंहत 15 वर्ष वाले मेरे आगे झुक गये, और हमने वहाँ से बिदाई ली। हालाँकि कि परिवार ने मुझे उपालंभ भी दिया। पर सबने यह देख ही लिया कि यह लड़का कच्ची मिट्टी का नहीं है। यह भलेभलों को ठंडा करने की पुण्याई वाला है।

अलबत यह पुण्याई प्रभु के प्रति अनन्य श्रद्धा से ही प्रगटी थी। ऐसा मैं निश्चित मानता हूँ।

आज चमत्कारों की, जतंर-मंतर-तंत्र की बातें करने वाले अनेक गृहस्थ चारों तरफ निकल पड़े है। लोग तो ठीक, पर यदि हम संयमी अपने रोग-शोकादि के निवारण के लिए उनके चरणों में जायेंगे, उनके कहने के अनुसार विधि करेंगे, तो मुझे लगता है कि यह एक बड़ी होनारत ही गिनी जायेंगी। हम सभी की श्रद्धा तो मेरु की भांति अडिग होनी चाहिए। देव के रूप में सिर्फ वीतराग सर्वज्ञ भगवंतो, सद्गुरू के रूप मे सिर्फ वैरागी-ज्ञानी-साधु-साध्वी भगवंत और धर्म अपने चारित्र के सुंदर आचार-इसके सिवाय किसी की भी शरम में आने की जरूरत नही है। किसीको चमत्कार सुनकर आश्चर्यचकित नहीं होना है, किसी के पास दीनता दिखाने की जरूरत नहीं है- यह मेरा अभिप्राय है, आपको अच्छा लगे तो

स्वीकारना।

वैशाख वद 4 के दिन दीक्षा के बाद मुझे मेरे भीतर कितने ही दोष दिखे। उसमें एक दोष बहुत अधिक दिखा। वह था शील स्वभाव ! छोटी-छोटे बातो में मेरी आँखे भर जाती। कोई मुझे उपालंभ दे, कोई मेरी मश्करी करें, कोई मेरी भूल बतायें इन सब के वक्त मुझे रोना आ जाता था। सभी मुझे आत्मीयता से कहते। पर मुझे रोता देखकर सभी को ख्याल आ जाता कि इसका हृदय भर आया है.... इसलिए मुझे सान्त्वना देते।

मेरे सबसे आत्मीय मेरे गुरूजी थे। वे संयम के चुस्त आग्रही ! उनके सान्निध्य के प्रताप से मेरे में बहुत अच्छे संस्कार पड़े।

एक बार दादागुरू और बाकी के कुल 50 साधु एक साथ चातुर्मास कर रहे थे। संयम-स्वाध्याय की शिक्षा के लिए उस चार्तुमास में सब साथ थे। एक दिन दादागुरू ने सभी की शक्ति का माप निकालने के लिए कहा कि ''जो नये साधु है, उन्हें कल अष्टक प्रकरण की गाथाएं याद करनी है? पूरे दिन में कितनी गाथाएँ याद कर सकते हों, वह मुझे देखना है।''

दूसरे दिन नये साधु जल्दी सुबह से गाथा गोखने लगे। उस दिन उनको मांडली का कार्य, पडिलेहणादि में छूट दी गई थी, जिससे उनको पढने का समय मिले।

मुझमें पहले से ही ज्ञान का क्षयोपशम भी कम और ज्ञान के लिए उत्साह भी कम, इसलिए मैं नया होते हुए भी मैंने स्पर्धा में भाग नहीं लिया।

दूसरे साधु तो सुबह से गोखने बैठ गये थे। पर लगभग आठ बजे दादागुरू को वंदन करने गया, तब उन्होंने मुझे पूछा ''कितनी गाथा गोखी?''

''मैंने तो गोखी ही नहीं है।''

''क्यूं?''

'' गुरुदेव ! मेरा क्षयोपशम बहुत कम है।''

ऐसा क्यूं मान लिया? तू जा, अभी गोखने बैठ जा, और देख उपर टेरेस में दो रूम है, वहाँ गोखने बैठ जा, तुझे बियासणा है, पर उसके लिए तुझे नीचे नहीं आना है, तुझे ऊपर ही देने के लिए आ जायेंगे.... जा !''

दादागुरू के वचन के बाद गोखने के लिए बैठा।

लगभग पौने घंटे के बाद खुद मेरे गुरू ऊपर आये। मैं तुरंत खड़ा हुआ, मैंने देखा तो उनके हाथ में भगवान (स्थापनाजी), तरपणी, दाबडियुं.....था।

''गुरूजी! आप.....''

''मुझे गुरूदेव ने आज्ञा की है, इसलिए तेरी सेवा करने आया हूँ। चल जल्दी पच्च. पार ले और जल्दी पयस्-मंडक वापर के पुनः गोखने बैठ जा, बिलकुल समय नहीं बिगाड़ना।''

दादागुरू और गुरू दोनों मेरी बहुत संभाल लेते थे। मैं तो कितना छोटा! मेरे गुरू तब 27 वर्ष के आसपास के दीक्षापर्याय वाले और जबरदस्त प्रभावक! उनके प्रवचनों मे 500-1000 लोग इकट्ठे हो जाते थे.... वे आज मेरी सेवा मे थे।

पच्च. पारकर मैंने तुरंत नवकारशी पार ली, तब तक मेरे गुरूजी वहाँ ही खड़े रहे। जैसा वापरने का पूर्ण हुआ, तुरंत गुरूजी मेरे पात्रों को धोने के लिए ले गये। ''बस, तुम अभी गोखो! संमय मत बिगाडो, आज 100 गाथा याद करनी है।'' और वे पात्रा धोने लगे। उनकी भावना को पूरी करने के लिए मैं गोखने के लिए बैठ गया। दुपहर तक 50 जितनी गाथा हुई, मेरा सिर दुखने लगा। 100 नहीं होगा। ऐसा मुझे लगा, इसलिए दुपहर को गोचरी वापरने के बाद मैंने प्रयत्न छोड़ दिया। वहाँ थोड़े दिन के बाद होने वाली दीक्षा के कार्यक्रम में पहुंच गया। मुझे देखकर दादागुरू ने पूछा ''गाथा गोखी? कितनी?''

''मैंने प्रयत्न छोड़ दिया है, सिर दुख रहा है, 50 गोखी है....।''

''यह नहीं चलेगा, और प्रयत्न कर, पुरुषार्थ में खामी नहीं आनी चाहिए।''

मैं उपाश्रय में पहुँचा। परयत्न शुरू किया और सफल हुआ। मेरी कुल 100 गाथाएँ हुई और दे भी दी। दादागुरू और गुरू से बहुत आशीर्वाद मिले।

हालाँकि यह सिर्फ एक ही दिन का खेल था। सामान्य से मुझे पढने में रस कम था, इसलिए मैं दूसरी पुस्तकों को पढता रहता था। मेरे गुरूजी को यह अच्छा नहीं लगता था, वे स्वाध्याय के पक्के हिमायती! उन्होंने मुझे बारबार प्रेरणा की, उपालंभ दिया। सख्ती की कि ''सुन ले! यदि तू पढ़ेगा नहीं, शास्त्र बोध नहीं लेगा, तो मैं तुझे व्याख्यान की छूट नहीं दूँगा, मैं तुझे शिष्य नहीं बनाने दूँगा। तुझे अगले चातुर्मास के लिए नहीं भेजुँगा... तुझे पढ़ना ही पड़ेगा!''

पर मुझे संस्कृत बहुत कठिन लगता, मुझे आलस आता। सच्ची बात तो यह

थी कि मुझे रस भी कम था। अहमदाबाद के एक संघ में हम सात साधुओं का चातुर्मास था। उस दरम्यान गुरूजी ने मुझे धर्मबिन्दु ग्रन्थ का पू.आ. राजशेखरसूरिजी म. की भाषांतर वाली पुस्तक दी। ''तुझे संस्कृत भले ना जमे, पर यह तो जमेगा ना? गुजराती भाषांतर पढकर भी शास्त्रबोध ले।''

मैंने वो पुस्तक पढना चालु किया। उस दरम्यान मेरे हाथ में पू.आ. रत्नसुंदरसूरिजी म. की भीमसेन चरित्रवाली पुस्तक आयी। दो-तीन पन्ने पढे, और मैं आफरीन हो गया। मुझे उसमें बहुत दिलचस्पी हुई।

मुझे पता था कि मैं ऐसी पुस्तक पढता हूँ, वो मेरे गुरूजी को अच्छा नहीं लगता। उनको पुस्तक का विरोध नहीं था, पर मेरा ठोस स्वाध्याय होना चाहिए, उसके लिए वे मुझे दूसरी पुस्तक पढने के लिए ना कहते थे। इसलिए गुरूजी को पूछे बिना उनको पता ना चले इस तरह मैंने पुस्तक पढने का जारी रखा।

एक दिन दुपहर की गोचरी आई। वह पुस्तक मेरी पाट पर रखकर, बीच में पढने का जो पन्ना था, वहाँ पेन्सिल रखके मैं गोचरी वापरने गया। इस तरफ गुरूजी की गोचरी जल्दी पूरी हो गई, और उन्हें कोई पुस्तक का काम पड़ा। उस समय मैं ही गुरूजी के पुस्तकों की संभाल रखता था। उनको जो चाहिए, वह पुस्तक मंगाते, मैं उन्हें ढूंढ के देता था।

पर अभी मैं वापरने बैठा था, इसलिए गुरूजी स्वयं ही मेरी जगह पर रहे कपाट में पुस्तक ढूंढने गये। मेरी पाट पर बैठकर कपाट खोलकर वे इच्छित पुस्तक ढूंढ रहे थे। वहीं उनकी नजर मेरे पाट पर पड़ी पुस्तक पर गिरी। उन्होंने हाथ में ली। बीच में पेन्सिल रखी होने से ख्याल आ गया कि पुस्तक 40 पन्ने तक पढ़ ली है। गुरूजी को यह अच्छा नहीं लगा। ''मैंने इसे धर्मबिन्दु भाषांतर पढने के लिये दिया है, फिर भी वह ऐसी दूसरी पुस्तक पढ रहा है। और मुझे पूछता भी नहीं है? सब गुप्त तरीके से.... कल दूसरे वांचन के तरफ मन होगा।''

उन्होंने मुझे सख्त उपालंभ दिया। गुरू के तौर पर उन्होंने उनका कर्म निभाया। मुझे यह सब अच्छा लगा। उनकी भावनाओं को मैं समझता था। वे हमारी सुरक्षा के लिऐ कितने प्रयत्नशील थे, वह मैं बराबर जानता था। अरे, एक बार विहार में उपाश्रय नहीं मिलने से एक बंगले में उतरने का हुआ। वहाँ नीचे के हॉल में टी.वी. चालु। घर की बहनें नीचे रहती थी। हम सभी बालकनी में रूके थे।

बालकनी में से नीचे का सब दिख रहा था। गुरूजी हमको छोटे से छोटे दोष से बचाना चाहते थे। उन्होंने कह दिया कि ''तुम सभी को बालकनी में नीचे हॉल की दिशा में संथारा नहीं करना है। वहाँ मैं अकेले करूँगा, तुम सभी को विपरीत दिशा में संथारा करना है।''

गरमी का वह समय! गुरूजी जहाँ संथारा करने वाले थे, वहाँ सख्त बाफ! हमको जहाँ करना था वहाँ संपूर्ण हवां!

''गुरूजी! आप गरमी में क्यूं परेशान हो रहे हो? हम पर विश्वास रखो, हम कोई भी टी.वी. की तरफ नजर नहीं करेंगे, पर आप इस पवनवाले स्थान में ही संथारा करो।''

''आप सभी उत्तम हो, संयमचुस्त हो, विश्वासपात्र हो, फिर भी अभी छोटे हो। गुरू तरीके से मेरा फर्ज है कि मैं तुमको अशुभ निमित्तों में रखू नहीं। यह तो मजबूरी है यहाँ उतरना पड़ा है..... आप मेरी चिंता मत करो, एक दिन गरमी सहन करनी पडेगी, यह कोई बड़ी बात नही है। और हा! मैं टी.वी. नहीं देखूंगा तुम मुझ पर भरोसा रखोगे ना?

दूसरी बात! आज रात को किसी को भी मात्रु जाना हो, तो मुझे उठाना, मैं परठ के आऊँगा। नीचे हॉल में से पसार होकर जाना पड़ेगा। इसलिए आपको किसी को भी नहीं जाना है। रात को दो-तीन बजे जाना पड़े तो भी यही समझना।''

यह पूरा प्रसंग मुझे याद आया, इसलिए अभी गुरूजी ने कथा की पुस्तक पढने के बदले जो उपालंभ दिया वह भी मुझे मीठा ही लगा। पर मुझे इस कथा में इतनी दिलचस्पी थी, कि मैं उसे पूरा करे बिना छोड़नेवाला नहीं था। और इसलिए ही गुरूजी के द्वारा इतना कहने पर भी मैं स्वच्छंदी बना और गुप्त तरीके से पुस्तक पढ़ना चालु रखा। मैं टेबल पर काम्बली रखु और उसके ऊपर धर्मबिन्दु का पुस्तक, काम्बली के नीचे मेरी कथा की पुस्तक!

सिर्फ दो ही पन्ने बाकी थे। शाम का समय, मेरे सामने ही गुरूजी गोचरी वापर रहे थे। मुझे ऐसा कि दो पन्ने तो अभी पढ लूँगा, और गुरूजी मेरे पास कहा बैठने वाले है। इसलिए काम्बली के नीचे कथा की पुस्तक रखकर पढ रहा था।

वापरने के बाद मुँह साफ करते गुरूजी की नजर मेरी तरफ गई, उनको शंका हुई। ''क्या पढ रहा है?''

''जी! जी!'' मेरी जीभ अटकने लगी, ''धर्मबिन्दु.....'' मैंने भय से झूठा जवाब दिया ''तू सच बोल रहा है?'' खड़ा रह.... गुरूजी खडे हो गये, ''काम्बली क्यूं रखी है? नहीं! काम्बली के नीचे क्या है?'' जमाने के अनुभवी गुरूजी मेरे पास आये और काम्बली दूर की, वह पुस्तक, अंतिम दो पन्ने खुले दिखे।

''इतना बड़ा गुरूद्रोह! इतने उपालंभ देने के बाद भी ऐसी घोर स्वच्छंदता! तेरा क्या होगा? उसकी मुझे चिंता हो रही है, और तेरे कारण तेरे इस गुरू की क्या दशा होगी? यह चोरी! ओ भगवान!'' गुरूजी को आक्रोश सभर हुए देख मुझे बहुत पश्चाताप हुआ।

''मुझे लगता है कि तेरे आत्मकल्याण हेतु मुझे दूसरे कोई अच्छे ग्रुप में पढ़ने के लिए भेजना पड़ेगा। तेरे लिए मेरा पुण्य कम पड़ रहा है.....अब मैं तुझे अपने ही समुदाय में दूसरे ग्रुप में रख देता हूँ। शायद उसमें तेरा कल्याण हो जाये।''

''गुरूजी! अब मैं ऐसी भूल नहीं करूँगा....'' पैरों में गिरकर मैंने माफी माँगी, मेरी आँखों से श्रावण-भादरवा बरस रहा था, ''मुझे क्षमा करो।''

''तुझे क्षमा देने का कोई प्रश्न ही नहीं है। पर सिर्फ इतने से कार्य पूरा नहीं होता। भद्रबाहु स्वामी ने स्थूलिभद्रजी को शिक्षा दी, वैसी भी शिक्षा तो करनी ही पड़ेगी।'' और आखिर गुरूजी ने पत्र व्यवहार करके मुझे हमारे ही समुदाय के एक दूसरे ग्रुप में रखा। साधु सभी अच्छे, मेरे गुरूजी को भी पूरा भरोसा..... इसलिए सब बहुत शीघ्रगति से हुआ।

जब मैं नये ग्रुप मे जाने के लिए विहार कर रहा था, तब गुरूजी खुद मुझे छोड़ने के लिऐ आये। भरपूर आश्वासन दिया और वह सम्पत्ति लेकर मैं नये ग्रुप में शामिल हो गया।

वि.सं. 2068 के मगसर, पोष, माह मास के दौरान 12 साधुओं के ग्रुप के साथ मैं महेसाणा-ऊंजा-पाटण-शंखेश्वर विहार करके पुनः अहमदाबाद आया। उस समय के दौरान दसवैकालिक की समयसुदंर म.सा. की टीका, ओघनिर्युक्ति, दो ग्रंथो का अभ्यास हुआ।

हालाँकि अभी भी पढ़ने में इतना सख्त पुरुषार्थ तो मेरा नहीं है, फिर भी खुश हूँ। उसके बाद फागण से लेकर जेठ तक इन बारह साधुओं के ग्रुप के साथ ही

अहमदाबाद, कलिकुंड, सुरेन्द्रनगर.... तक विहार में ही रहा, और चातुर्मास भी इस ग्रुप के साथ ही किया। इस विहार के दौरान उपदेशमाला की सिद्धर्षिगणि की टीका का अक्षरशः वाचन हुआ। दो भाग की परीक्षा दी, अब पिंडनिर्युक्ति पढ रहा हूँ। ''चातुर्मास में न्याय हो जायेगा'' ऐसा वडील कह रहे है.... मैं भी यही इच्छा रखता हूँ कि मैं सक्षम बन जाऊँ। खुद ही ग्रन्थ पढने लगू। बस बाद में जल्दी गुरूजी के पास चला जाऊँ। उनकी भावनाओं को तृप्त करूँगा, तो मुझे शुद्धि की प्राप्ति होगी।

प्रभु! मेरे प्रमाद को दूर करना, मेरे शास्त्राभ्यास को सच्चा बनाना। मैं मेरे गुरूजी को प्रसन्न कर सकूँ, ऐसा मेरा आत्मबल बढाना।

हाँ! उन मुनिराज ने शब्दों में अभी तक का इतिहास कह दिया। वे जिस ग्रुप में जुड़े है, वह हमारा 12 साधुओं का ग्रुप! उपर की प्रत्येक घटना उन मुनिराज ने मुझे स्वयं कही है। इसलिए वाया वाया सुना एक भी प्रसंग नही है। मुनिराज को जो अनुभव हुआ और मुझे कहा वही उनकी भाषा में यहाँ ढाल दिया। आज उनकी उम्र है 21 वर्ष। दीक्षा पर्याय है 7 वर्ष। मैं कबूल करता हूँ और वे भी कबुल करते है कि उनका पढने का उत्साह और पुरुषार्थ दोनों मध्यम है। 60 प्रतिशत से 90 प्रतिशत कह सकते है। यदि 100 प्रतिशत उल्लास और पुरुषार्थ वाले बने, तो निश्चित शास्त्रबोध के क्षेत्र में अच्छे से अच्छा विकास कर सकते है। पर हमें एक बात स्वीकारनी चाहिए कि सभी के पास सब अपेक्षा नहीं रख सकते। छद्मस्थों में कोई खामी तो होगी ही। हमको किसी भी जीव में छोटा सा एक गुण भी दिखे तो हमको उसकी प्रशंसा-अनुमोदना करनी ही चाहिए।

ऊपर के सभी प्रसंग उन्होंने एक साथ नहीं कहे, पर टुकड़े-टुकड़े में! एक प्रसंग पाटण के प्रवेश के समय.... एक प्रसंग चोटीला के प्रवेश के समय.... एक प्रसंग कुवाड गाँव में....

मुझे सबसे अधिक आश्चर्य इस बात का हुआ कि 21 वर्ष के इस मुनिराज का लाभांतरायादि का क्षयोपशम गजब कोटि का है। वे जंगल मे मंगल खडा कर सकते है, अशक्य को शक्य बना देते है। अलबत उत्तर गुजरात के 3 मास दरम्यान ऐसा ध्यान नहीं गया था। पर उसके बाद के 4-5 महिने में तो ऐसे अनेकानेक प्रसंग बने थे, जहाँ उनकी लब्धि ने प्रत्यक्ष परचा दिखाया था। आज वह 12-15

प्रसंग तो याद नहीं आयेंगे, फिर भी जो याद है वह कहता हूँ। यह कहने के पीछे आशय इतना ही है कि जैन श्रमण कैसे-कैसे होते है? इसका सभी को ख्याल रखना चाहिये। एकदम सामान्य दिखता साधु भी कैसा प्रतिभाशाली हो सकता है, इसलिए किसी भी संयमी का आदरभाव रखना चाहिए... तथा शास्त्रों में लब्धिधारी साधुओं का वर्णन अनेक बार पढा तो है, पर प्रत्यक्ष देखने से वचनश्रद्धा अधिकाधिक दृढ बनती जाती है।

हम वैशाखसुद में कलिकुंड में रूक थे। गोचरी निर्दोष मिले, उसके लिए बड़े भाग की गोचरी जैनेतर घरों से लाते। आस-पास में सोसायटी बहुत थी। दुपहर दो-तीन साधु गोचरी के लिए लगभग एक घंटा घूम के आते थे। जैनेतर घरों में अच्छी शासन-प्रभावना भी हुई।

पर जो गोचरी आती वह एकदम सादी! रोटी-जाड़ी रोटी मिलती, दाल-सब्जी नही मिलती थी। मिले तो भी एकदम कम। इसलिए भोजनशाला में से थोड़ा लेना पड़ता। एक दिन किसी कारण से मुनिराज को गोचरी भेजना पड़ा, उस समय ही यह बात निकली कि ''यह साधु तो लब्धिधारी है..... ''उस समय मुझे विशेष से यह बात जानने को मिली योगानुयोग उसी दिन वे गोचरी लेकर आये। पात्रा बाहर निकाले, तो आश्चर्य! पेडाओ का जथ्था! सब्जी भी पर्याप्त। दाल भी बहुत और रस भी था.....।

मुझे पहले शंका तो हुई कि ''यह कुछ गड़बड़ तो नहीं करता है ना?'' पर तुरंत विचार आया कि यह तो जैनेतरों में यहाँ पहली बार गए है। कोई परिचय ही नहीं है, तो भक्तों के द्वारा गड़बड़ करने का प्रश्न ही कहाँ?

और मेरा और तमाम साधुओं का स्पष्ट अनुभव है कि स्वभाव के वे एकदम सरल! ऐसी कपटवृत्ति बिलकुल नहीं है।

दो-पाँच दिन बाद रात को साढ़े नौ बजे एक फोन करवाना पड़ा। पर उस तीर्थ में और कोई मिला नहीं था । एक महात्मा को तलाश करने के लिए भेजा कि कोई श्रावक हो तो ढूंढ के लाओ... वे महात्मा तलाश करके वापस आए, पर निष्फल होकर।

अचानक मुझे इस मुनिराज की परीक्षा करने का मन हुआ। ''एक काम करो, इनको भेजा।'' और वे तुरंत खड़े होकर ढूंढने चले गये। यह लब्धिधारी होंगे, तो

उनको कोई मिल जायेगा.... ऐसी बातें तो अभी चल ही रही थी, वहीं ये मुनिराज एक श्रावक को लेकर आये और फटाफट कार्य पूरा हो गया।

अभी तो मेरी श्रद्धा और बढ़ गई। हम विहार करके मूळी गाँव में पहुँचे, एक साथ 17 कि.मी. का विहार करने से सभी थके हुए थे। तब उन मुनिराज ने दुपहर को गोचरी जाने की तैयारी बतायी।

कुल तीन महात्मा गोचरी गये थे। वहाँ भी यही चमत्कार! दूसरे दो के पात्रों में सादी-सादी गोचरी! सब्जी-दाल भी कम। इनके पात्रे में पेडो का ढेर, पात्रा भरके सब्जी और तरपणी भरके दाल।

सबसे अधिक अनुभव हुआ महावीरपुरम् तीर्थ में। वहाँ निर्दोष गोचरी नहीं मिलती, क्योंकि आस-पास मे जैनेतरों के कोई गाँव नहीं..... इस विचार से हमने निर्णय लिया कि चोटीला से शाम को दस बजे चलकर महावीरपुरम् जायेंगे और सुबह 15 कि.मी. चलकर बेटी गाँव जायेंगे, वहाँ गोचरी वापरेंगे। पर सभी थक गये थे, गरमी में बड़े विहार खीचने की ताकत सभी की कम। उनमें से एक महात्मा बुखार और पैर घिसने के कारण सुस्त पड़ गये। इसलिए निर्णय लिया कि चोटिला से सुबह 10 कि.मी. चलकर तीर्थ में, बाद में शाम को 5 कि.मी.! दूसरे दिन सुबह बेटी!

'तीर्थ में निर्दोष गोचरी का क्या करेंगे?' यह प्रश्न हम सभी को उलझन में डाल रहा था। फिर भी भगवान के भरोसे हम पहुँचे ''कदाचित् यात्रिको की बड़ी संख्या आ जाये तो?''

पर वहाँ पहुँचने के बाद जानने को मिला कि शुक्रवार जैसे चालू दिन में भी 10-20 यात्रिक नहीं होते।

12 साधुओं की एकासणा की निर्दोष गोचरी के लिए रसोड़े में कम से कम 120 लोग खानेवाले हो, तो मुश्किल से ठिकाना पड़ता है और यहाँ ज्यादा से ज्यादा 20! दोषित लेना हो तो डेढ सौ साधु-साध्वी को भी दिक्कत ना हो ऐसी व्यवस्था! पर निर्दोष के लिए बिचारे गृहस्थ क्या कर सकते थे? 12 में से एक को नवकारशी। उन्होंने तो आठ लोगों के लिए बनाई हुई रसोई में से मिश्र गोचरी ना छुटके वापरी, पर बाकी के 11 के एकासणा का क्या? कोई चिडिया भी नहीं आती, तो यात्रिकों की बात ही कहाँ? उपाश्रय से बाहर निकलकर मैंने दूर तक

नजर फैलाई। नजदीक में गाँव तो था, पर वह हरिजनों का होने से वहाँ गोचरी तो वहोर नहीं सकते। दूसरे गाँव दो कि.मी. -3 कि.मी. दूर थे। इतने दूर जाना, गोचरी वहोरनी, वापस आना इन सभी लंबी प्रकिया के लिए मन नहीं मान रहा था। पर आधा कि.मी. दूर रिलायन्स का पेट्रोल पम्प और बाजु में ही होटल जैसा दिखा। शायद वहाँ ढाबे में रोटी मिल जाये। मुझे विचार आया और वह लब्धिधारी साधु मुझे सामने दिखे। आज सबसे अधिक कसौटी थी। हालाँकि दस ही मिनिट पहले उन्होंने मुझे कहा था कि ''दो कि.मी. दूर जो गाँव है, वहाँ मैं जाकर आऊँगा।'' पर मेरा मन नहीं मान रहा था। साधु को इतना कहा चलाऊ?

पर यह होटल तो सामने ही थी। मैंने मुनिराज को बुलाया और दूर रहे उस स्थान को बता दिया। ''आज अभी वहाँ पहुँच जाओ, लेट जाओगे तो धूप लगेगी।'' और गौतमस्वामी का नाम लेकर, बडों के आशीर्वाद लेकर झोली-तरपणी लेकर पूरे उल्लास के साथ निकल पड़े। मैंने जाते हुए उनको देखा, आज मेरी श्रद्धा टूट गई थी। इस जंगल में उनको कहा सफलता मिलेगी?

आधा कि.मी. जाना, पुनः आना इन सभी में 20-25 मिनिट हुई होंगी, शायद आधा घंटा भी हो..... पर घंटा हो गया फिर भी ना आये। हमने इस तरफ पाठ शुरू किया। मन में चिंता भी हुई कि इतना टाइम क्यूं हुआ?

डेढ घंटा हो गया, और चालु पाठ में एक मुनि की नजर दूर से, रफ्तार से चलते आ रहे लब्धिधारी पर गिरी..... मुझे भी ख्याल आ गया, पाठ रखकर सभी उनकी तरफ दौड़े। ख्याल आ गया कि अतिशय वजन के कारण ही वे धीमी रफ्तार से चल रहे थे।

अंदर आकर उन्होंने पात्रा बाहर निकाला और हम सभी आश्चर्यचकित हुए। कुल दो पात्रे सिर्फ मिठाई से भरे हुए थे..... मोहनथाल, साठा (दहीथरा), बेसन के लड्डु लगभग पचास टुकड़े कम से कम। एक पूरी तरपणी भरकर दाल, और 7 टोक्सी जितना भात। रोटी एक भी नहीं।

''वाह रे वाह ! तुमने तो गजब कर दिया, पर पर....''

''सुनो !'' गोचरी रखकर वे बोले, ''ढाबा जैसा तो कुछ नहीं था। वहाँ कुछ नहीं मिला, पर मुझे उन्होंने कहा कि आगे चामुंडानगर पाँच ही मिनिट के रास्ते पर है। मैं आगे गया। पाँच मिनिट के बदले बीस मिनिट के बाद चामुंडानगर आया,

वहाँ भी ऐसा सभी ने कहा कि आज हमारा इकट्ठा भोजन है। वहाँ तुम जाओ, मैं एन.एच.बी. छोड़कर अंदर की गली में गया। जहाँ पर खाना था उस स्थान पर पहुँचा। ''हमको भिक्षा चाहिए आप दोंगे?'' मैंने बात की।

''महाराज! यहाँ कोई भिक्षा नहीं मिलेगी...'' भाईने सीधा ना कह दिया। मुझे हुआ मेरी मेहतन निष्फल जायेगी। किनारे आकर नाँव डूब जायेगी।

''देखो भाई! तुम्हारे यहाँ जो रसोई बनी हो, उसमें से तो हमको भिक्षा दे सकते हो ना हमको जो चलेगा, वह लेंगे.....''

''महाराज! आपको खाने की भिक्षा चाहिए? तो ऐसा कहा ना? हम तो समझे कि तुम पैसे माँग रहे हो, हम पैसे नहीं देंगे.....पर महाराज! रसोई बनते तो समय लेगेगा अभी तो दस ही बजे है। दाल-भात तैयार है, मीठाई तैयार है, पूरी बननी बाकी है। आलू की सब्जी है.....''

''यह सब्जी हमको नहीं चलेगी।'' लब्धिधारी ने कहा और उसके सिवाय की वस्तुओं के लिए पूछपरछ करके वहोर लिया।

''भाव कैसे थे?''

''समुद्र के उछलते मौज देख लो'' वे मुनि बोले। और अब तो मेरी श्रद्धा चोल मजीठ के रंग के जैसे हो गई, कि 'इस महात्मा के पास ऐसी कोई विशिष्ट लब्धि है ही, उसमें लेश भी संदेह रखने जैसा नहीं है।'

चोटीला से शाम को विहार करके निकले थे, रास्ते में फैक्ट्री या पेट्रोलपंप वगैरह में से जो मिलेगा, वहां रुकेंगे....ऐसा निर्णय किया। कोई स्थान निश्चित नही था। सूर्यास्त के समय टाटा मोटर्स रीपेरिंग की एक बड़ी कंपनी के पास पहुंचे। एक खाली विशाल शेड के नीचे मैं और लब्धिधारी पहुँचे। तभी वहाँ का कामदार आया ''महाराज! यहाँ नहीं रूक सकोगे.....''

''हमको सिर्फ सोना ही है, सुबह चले जायेंगे।''

''नहीं महाराज! यहाँ कोई रूकता नहीं है, हमको आप पर कोई शंका नहीं है, और यहाँ चोरी जैसी भी कुछ नहीं है.....पर.....''

हमारी दो-चार मिनिट चर्चा चली। इस चर्चा में मुख्य मैं था, मुझे सफलता नहीं मिली। कामदार ने अंत में कहा ''तुम एक काम करो, अंदर मालिक को पूछ लो....।''

मुझे लगा कि इसमें मेरा पुण्य काम नहीं करेगा.....इसलिए मैंने लब्धिधारी को कहा कि ''पीछे साधु आ रहे है, उन सभी को अटकाने के लिए मैं रोड पर खडा रहता हूँ। तुम अंदर बात करो.....'' और मैं उनकी लब्धि को देखने हेतु वहाँ से छटक गया।

पाँच ही मिनिट में वे वापस आये, ''चलो, मालिक ने हाँ कही है। वह तो बहुत खुश हो गया। पूरी रूम खाली करके दे रहा है, यहाँ के लोग उस रूम में रात को टी.वी. देखते है, पर उन सभी ने हाँ कहा है कि आज हम टी.वी. नहीं देखेंगे। तुम उस रूम में सो जाओ। और अधिक अपने आचारों की ब ात सुनकर तो वह मालिक अवाक् ही बन गया।

बादमें तो जिस कामदार ने ना कही थी, उसी कामदार ने घंटे के सत्संग के बाद प्रतिज्ञा की इस रास्ते पर जो कोई भी साधु-साध्वीजी पसार होंगे उन सभी को विनंती करूंगा कि ''यहाँ पधारो यहाँ रात रूको, और सभी सुविधाएँ करके दूँगा'' इस लब्धिधारी मुनि ने मागसर-पोष-महा मास दरम्यान रात को अनेकबार भयंकर ठंडी के बीच में खुल्ले शरीर में घंटो तक कायोत्सर्ग किये है। मुझे पता है कि पशमीना की काम्बली और दो कम्बल ओढने के बाद भी मैं बकुची बांधकर पडा रहता, तो उस समय यह मुनिराज खुल्ले शरीर में कायोत्सर्ग करते थे। पित्त के प्रकोप वाले यह लब्धिधारी ! बार-बार सिर चढ जाता है, धूप सहन नहीं कर सकते है, इसलिए दुपहर की गोचरी के लिए हम उनको भेजते नहीं थे। उनका लाभ हम बार-बार नहीं लेते थे और वैसे भी किसी की लब्धि का दुरुपयोग थोड़े किया जाता है? मीठे वृक्ष के मूल को उखाडना नहीं चाहिए, इसलिए ऐसा अवसर जब आता है तब ही उनका उपयोग करते है। और तब पूरे उत्साह के साथ वह हमकों सहायता करने के लिए तैयार रहते है।

वे चालाक भी है। साबरमती रेल्वे स्टेशन पर शाम के समय काम्बली ओढकर वड़ीनीति के लिए गए। निर्जन जगह पर बैठे, कार्य लगभग पूरा हो गया था.... वहाँ इन्होंने किसी के पैर की आवाज सुनी.... देखा तो गुंडे जैसा आदमी उनकी तरफ दौड़ता आ रहा था। उसके हाथ में खुल्ली चाकू थी। यह मुनि घबराये, खड़े होकर भागे, वह आदमी भी पीछे दौड़ा।

अचानक मुनि को विचार आया ''यह गुंडा मुझे साध्वी समझकर तो मेरे

पीछे नहीं पड़ा है ना? साधु के पास इसे क्या मिलेगा? हाँ! विकार से वासित गुंडा वासना को संतृप्त करने हेतु साध्वी का भोग लेने के लिये पीछे पडा है, यह शक्य है। मैंने काम्बली ओढी है, इसलिए उसे ख्याल नहीं आया होगा कि यह साधु है या साध्वी है?''

और काम्बलीकाल होते हुए भी, उसका उपयोग होते हुए भी होशियार मुनि ने सिर के उपर से काम्बली खींच ली और सिर खुल्ला कर दिया..... जैसे ही उस गुंडे ने सिर देखा, वैसे ही उसने मुँह घुमा लिया। मुनि की धारणा अक्षरशः सही थी। उपाश्रय में आकर गुरूजी से बात की। काम्बलीकाल में काम्बली निकालने का प्रायश्चित क्या आता है?'' पूछा। गुरूजी ने पीठ थपथपाकर कहा कि ''तूने तो जोरदार बुद्धि का उपयोग किया। इसका प्रायश्चित नहीं आयेगा, आयेगा तो भी कम आयेगा। तू आलोचना में लिख देना।''

अंत में, यह चातुर्मास हमारे साथ रहकर वे उनके गुरूजी के पास जायेंगे। हम उन्हें पढाने का पूरा प्रयत्न करेंगे, सक्षम बनाने का। मुझे लगता है कि हम 100 प्रतिशत भले सफल ना बने, पर हम हमारे प्रयत्न में निष्फल भी नहीं होंगे.....उनके गुरूजी ने हम पर विश्वास करके उनको यहाँ भेजा था, तो यह विश्वास बढे ऐसा हमें करना है।

प्रभु! तू हमको इसके लिए शक्ति देना, समझ देना।

चोटीला के महावीरपुरम् से शुरू किया यह लेख आज राजकोट मांडवीचोक जेठ वद चौदस 2068 के दिन गोचरी मांडली में बैठे-बैठे गोचरी आने की राह देखता पौने बजे पूरा कर रहा हूँ। भविष्य में इस प्रसंग का स्मरण रहे, इसके लिये यहाँ स्थान समय बतायें है।

मुनिराज का सांसारिक नाम, गाँव बदला है। मुनिराज का क्या नाम है? वह तुम सभी ढूंढ लेना। अथवा तो सभी मुनिओं में उनकी कल्पना कर भावभरी वंदना अर्पण करना, यही सिर्फ एक प्रार्थना!

एक अजैन श्रावक को कोटि-कोटि वंदना!

''म.सा. ये भाई आपको मिलने आये है। आपका समय नहीं बिगाडेगे, वंदनादि करके निकल जायेंगे।'' राजकोट चातुर्मास के दौरान जागनाथ जैन संघ कें उपाश्रय में चौथे मंजिल की रूम में बैठा था, तब वहाँ के स्थानिक श्रावक विक्रमभाई किसी भाई को लेकर आये थे।

मैं उस भाई को देखते ही स्थिर हो गया।

एकदम सौम्य मुद्रा!

मुख पर तेज चमक रहा था।

''कहाँ से आये हो? मैंने आपको पहचाना नहीं।''

''पोरबंदर से आया हूँ'' मीठे मधुर शब्द से वह भाई बोला।

''पोरबंदर से?'' मैं चमका! दो-तीन महिने पहले ही आया एक पत्र याद आया। पत्र लिखने वाले का नाम भी याद आ गया। उसमें उन्होंने लिखा था कि ''एकबार आपको मिलने की भावना है। आपके विरतिदूत के लेख पढ़े है, अच्छे लगे है, इसलिए और यहाँ चातुर्मास किया था उन साध्वीजी म.सा. की प्ररेणा से एकबार आपके दर्शन की भावना है।''

वह याद आते ही मैंने सामने से पूछा ''रश्मिनभई? रश्मिनभाई पुरोहित?''

''हाँ जी! आपको अच्छा याद रहता है, आपको पहले पत्र भेजा था। आज अचानक काम से राजकोट आना हुआ, इसलिए मिलने आया हूँ।''

''तुम्हारी अटक (सरनेम) पुरोहित है, तो तुम जैन हो? या....'' मैंने जिज्ञासा से पूछा।

''म.सा. मैं ब्राह्मण हूँ। आयुर्वेदिक डॉक्टर हूँ। पोरबंदर में मेरा घर जैन मंदिर के पास में है। एक मुमुक्षु के साथ मेरा अच्छा परियच....इसलिए जैनधर्म के विषय में थोड़ी जानकारी है। उसमें एक दिन पू.आ. रत्नसुंदरसूरीजी म.सा. की पुस्तक 'प्रेमसभर पत्रमाला' मेरे हाथ में आयी और मेरी दुनियां बदल गई। म.सा.! मेरा इतिहास बहुत बड़ा है, पर शॉर्ट में कहूँ तो अब मैं पक्का जैन बन गया हूँ। हमेशा नवकारसी-चौविहार-पूजा तो चालू ही है। मुझे व्यसन है पुस्तकों का। उसमें भी अभी तो धार्मिक-अध्यात्मिक पुस्तक ही पढता हूँ। पू.आ.भं. की पुस्तकों का

कायमी ग्राहक हूँ। पर मेरे यहाँ जब पुस्तक आती है, तब यदि मेरा दुपहर का खाना बाकी हो, तो मेरी पत्नी पुस्तक छुपा देती है। भोजन कर लूँ, उसके बाद ही पुस्तक देती है, क्योंकि उसे पता है कि 'पुस्तक हाथ में आने के बाद मैं पढने बैठ जाऊँगा, भोजन करना ही छोड़ दूँगा।'

''म.सा. ! जैनशासन मुझे इतना अच्छा लगता है कि मुझे सतत अफसोस रहता है कि मेरा जन्म जैनकुल में क्यूं नहीं हुआ? रोज प्रभु को प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु ! आने वाले भव में तो मुझे जैनकुल में ही जन्म देना।''

वे मधुरभाषी, मितभावी रश्मिनभाई डॉक्टर इतना बोलते-बोलते तो गद्‌गद् हो गये । ''रश्मिनभई ! जैनत्व तो आचारों और विचारों से है, सिर्फ जैनकुल से नहीं। तुम भावजैन तो बन ही गये हो, और उसकी ही किंमत है। जो जैनकुल में जन्म लेने के बाद भी अलग ही दुनियां जी रहे है, वे कहा सच्चे जैन है?'' मैंने उनकी प्रशंसा करके सच्चे जैनत्व की व्याख्या भी कह दी।

''म.सा. ! मुझे ज्ञानाभ्यास में बहुत दिलचस्पी है। इसलिए विचार किया कि 'मेरे घर में ही एक ज्ञानभंडार जैसा बनाऊँ।' वैसे भी अब तक बहुत पुस्तक इकट्ठी हो गयी है। इसलिए यह कार्य चालु किया।

साहेबजी ! घर में एक रूम में 5000 पुस्तकों का ज्ञानभंडार बनाया है। वहाँ सरस्वती देवी का मंदिर भी बना दिया है। सभी पुस्तकें कम्प्युटराईज कर दी है, साधु-साध्वी पढ सके, ऐसी पुस्तक भी बहुत रखी है। यहाँ जो भी साधु-साध्वीजी आते है उनके पास अवश्य जाता हूँ, डॉक्टर हूँ.... तो सेवा का लाभ लेता हूँ और साथ में उनको कोई भी पुस्तक की आवश्यकता हो, तो वह भी देता हूँ।''

''म.सा. !

मेरी एक विनंती है, आप स्वीकारोंगे ना?''

''बोलो तो सही....बाद में देखेंगे।''

''आपको जीवन में पहली बार मिला हूँ, आप मुझे कोई सौगंध दे। जिससे उस सौगंध के निमित्त से मुझे आपका स्मरण रहे'' रश्मिनभाई बोले।

मैंने दो मिनिट विचार किया।

''दीक्षा लेने की भावना हो रही है?''

''अच्छा लगता है.....सचमुच। पर ऐसा उत्साह नहीं हुआ, विचार भी नहीं

किया। घर की जवाबदारी भी है।''

''भले पर ऐसी सौगंध लो कि जहाँ तक दीक्षा ना मिले, वहाँ तक कोई एक वस्तु का त्याग करो। वो वस्तु भी ऐसी रखो कि जो सतत ध्यान में रहे।''

''म.सा. ! दिन में 4-5 बार चाय पीता हूँ, तो उसकी बाधा ले लूँ....पर मुझे लगता है कि चाय मुझे व्यसनरूप नहीं है, इसलिए एकबार सौगंध लेने के बाद बार-बार नजर के सामने नहीं आयेगी। इसलिए सतत दीक्षा याद आये....यह जो अपना लक्ष्य है वह इससे पूरा नहीं होगा।''

''तो एक काम करों, जहाँ तक दीक्षा ना मिले, वहाँ तक सभी रोटी लुक्खी (बिना घी की) वापरनी (खानी) भाखरी-भाखरा भी लुक्खे खाना। ढोकले पर घी नहीं लेना। उपर से भी नहीं लेना....''

''दे दीजिये सौगंध म.सा. !'' एक क्षण भी विलंब किये बिना उस भरयुवान, आयुर्वेदिक अजैन डॉक्टर ने प्रतिज्ञा स्वीकार। मैंने सौगंध दी, और उस समय उसकी आँखो में से आँसु टपक रहे थे। मस्तक झुकाकर दो हाथ जोड़कर गद्‌गद् स्वर से इतना ही बोला ''म.सा. ! इस प्रतिज्ञा के प्रताप से मेरे जीवन में जल्दी से जल्दी दीक्षा उदय में आये, ऐसे आशीष देना।''

''आशीष तो दिया, पर आपको मेरा एक काम करना है.....''

''अरे निश्चित ! आप आदेश करो....''

''तुम्हारे जीवन मे परिवर्तन किस तरह आया? यह तुम्हारा इतिहास तुम मुझे विस्तार से लिखकर भिजवा सकोगे? मैं वह विरतिदूत में लिखूँगा, मुझे सिर्फ इतना बताना है कि एक अजैन ब्राह्मण डॉक्टर यदि जैनधर्म के प्रति इतनी श्रद्धा वाला है, तो हम सबका फर्ज क्या? अपने में जिनशासन मिलने की खुमारी कैसी होनी चाहिए? अपना जीवन कैसा होना चाहिए?''

''बोलो, लिखकर दोगे?''

''आपकी इच्छा है, तो निश्चित भेजुंगा, पर मुझे बराबर लिखना नहीं आता। आप मेरे लेख को पढकर आपको जो योग्य लगे, उस तरह छापना। और आपको योग्य ना लगे तो नहीं छापोगे तो भी चलेगा।''

हमारी यह बात पूरी हुई, उन्होंने बिदाई ली। समयसर लेख भिजवा दिया।

इस लेख में कुछ भी फेरफार किये बिना, मेरी भाषा में ढाले बिना उनके

शब्दों में ही पेश करता हूँ। स्वभाविक है कि वे डॉक्टर है, लेखक नहीं, इसलिए वाचकों को पकड़ के रखने के लिए आकर्षक पेशकश ना भी हो, पर उनके भावों को बराबर पकड़ना, बहुत पसंद आयेगा।

भूलना नहीं कि वह जन्म से जैनेतर है, ब्राह्मण है, भरयुवान है, आयुर्वेदिक डॉक्टर है, पत्नी-लड़की की जवाबदारी लेकर बैठे है।

फिर भी घर में श्रुतदेवी का मंदिर अभी ही बनाया है। घर में 5000 पुस्तकों का भंडार तैयार किया है।

उनके लेख के अंतिम शब्द एक अजैन श्रावक के कोटि कोटि वंदन, बहुत मार्मिक है, सोचोंगे..... तो बहुत जानने का मिलेगा।

प.पू. गुरूभगवंत

श्री.....

कोटि कोटि वंदना !

देव-गुरू की कृपा से शाता में होंगे।

आपके आशीर्वाद से,

श्रुतदेवी मंदिर-ज्ञानभंडार का कार्य अच्छा चल रहा है।

घी रहित रोटी का नियम चालु है।

आत्मीय आनंद आ रहा है,

आपको रोज याद करता हूँ।

यह आपने जो कहा था उसके अनुसार मंदमति ऐसा मैं कुछ लिखकर भेज रहा हूँ। आपको योग्य लगे तो ही ,ापना अथवा सुधारने जैसा लगे तो योग्य करना, बहुत संक्षेप में लिखा है।

हृदय में तो भावों की उर्मि का प्रवाह अभी चालु ही है,

फिर भी शब्दों को विराम देता हूँ।

ता. 12,13,14, जन. पालिताणा की यात्रा की। बहुत सुखद अनुभूति हुई। आपको दर्शन करते बहुत याद किया।

एक नम्र प्रार्थना कि,

यह 'विरतिदूत' में आने से यदि मेरे अहंकार की पुष्टि-वृद्धि हो ऐसा आपको लगे तो आपके अविरत आशीर्वाद....

कृपादृष्टि, वात्सल्य, मार्गदर्शन प्रेरणा की भावना के साथ

प्रत्युत्तर, विहार का प्रोग्राम, साथ में कोई हो तो उसका मोबाईल नंबर लिखना।

हमारे लायक कोई भी सेवा हो तो निःसंकोच लिखना।

आपके रश्मिन के कोटि कोटि वंदन....

पूज्य गुरूभगवंत म.सा. श्री वंदन!

देव-गुरू की कृपा से शाता में हो

स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपश्री की सूचना से मेरे जीवन का टर्निंग पोईन्ट और पहले के और अभी के जीवन के संस्मरणों को याद करके कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

आपश्री को नम्र प्रार्थना कि आपको लगे कि यह लेख प्रकाशित होने से मेरे में अहंकार की पुष्टि या वृद्धि होगी या मुझे अहंकार आयेगा तो आपश्री उसे प्रकाशित मत करना। (दूसरी बार)

मेरा जन्म एक अजैन सुखी-समृद्ध कुटुंब में हुआ.... तीन बहनों और दो भाईयों में मेरा नंबर चौथा। इससे सभी का लाडिला। माता की तरफ से वात्सल्य की अविरत धारा मिलती....बचपन में बहुत नटखट, तूफानी था। मेरा इच्छित ही करता था....

भोजन में प्रतिदिन आलू की सब्जी ही लेता। कभी हरी सब्जी खाता नहीं था। घर में छोटा-लाडला होने से, मेरी मम्मी रोज खास आलू की ही सब्जी बनाती, और कभी ना किया हो तो मैं रोकर जबरदस्ती करवाता। पर उसके सिवाय भोजन ही नहीं करता।

घर में पू. मम्मी बहुत ही धार्मिक वृत्ति की थी। रोज घर में दो टाइम ईश्वर की पूजा, आरती, भक्ति, धून होती थी तथा पू. मम्मी रोज मंदिर में गायों को, कबूतर को दाना भी डालती, त्यौहार या विशिष्ट दिनों में गरीब दीन-दुःखी लोगों को धन देती। पू. मम्मी के साथ रहकर बचपन से ईश्वर भक्ति, दर्शन, दान, पशु-पक्षीओं के प्रति करुणा बहुत ही थी.... पू. मम्मी के पास से आध्यात्मिक, सेवा करुणा के संस्कार खानदान से ही मिले थे।

बचपन से ही वांचन का (पढ़ने का) नया-नया जानने का बहुत ही शौक था। हमारे पड़ोस में रहने वाला, जैन (मुमुक्षु) मेरे संपर्क में आया। थोडे समय में ही वह मेरा परममित्र बन गया।

उस समय उसे संयम लेने की प्रबल भावना थी। इससे वह रोज चातुर्मास के हेतु पधारे हुए प.पू. साधुभगवंत के पास जाता। और उनके पास से अलग-अलग पुस्तके पढने हेतु लाता।

एक दिन उसमें प.पू.आ.श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. की पुस्तक नं. 41 'प्रेमसभर पत्रमाला' लाया। मैंने उसके घर वह पुस्तक देखी, और नाम से अच्छी लगी, इससे उसके पास से पढ़ने के लिए लाया।

पुस्तक पढ़ी।

'प्रेमसभर पत्रमाला'

प्रथम वांचन के बाद, अवास्तविक, काल्पनिक ही लगी....

वास्तविक दुनियां में

प्रेम देने वालो को तो प्रेम ही देना, परंतु द्वेष-तिरस्कार करने वालो को भी निःस्वार्थ अविरत प्रेम ही देना।

सच ही नहीं लगा...

परंतु आत्मा, हृदय, मन की गहराई तक एक-एक शब्द, वाक्य का स्पर्श हुआ। अनेक बार पढा...बहुत-बहुत अच्छा लगा।

हमेशा पढते समय कुछ अनोखी आत्मीय अनुभूति होती।

पुस्तक को हमेशा साथ में रखने की इच्छा हुई। मित्र को कहा। परंतु उसने कहा कि पूज्य म.सा. श्री के पास यह एक ही कॉपी है। अभी आपको नहीं दे सकेंगे।

पुस्तक के एक-एक शब्द, वाक्य, पन्ने को हृदयस्थ आत्मासात् किये थे फिर भी..... सतत् नियमित उसका वाचंन करना था।

''पुस्तक चली जायेगी तो?'' चिंता होने लगी। वहाँ ईश्वर ने दिमाग में एक विचार दिया।

विचार हुआ कि पूरी बुक में मेरे हस्ताक्षर लिख दूँ, तो दो कार्य एक साथ हो जायेंगे। सतत् लिखने से वह हृदयस्थ, आत्मसात् तो होंगे ही और हमेशा के लिए

मेरे पास रहेगी। किसी भी समय में मैं पुनः पढ सकूँगा। और मैंने पुस्तक में मेरे हस्ताक्षर लिख दिये।

बहुत आनंद आया। पुस्तक के शब्दों, वाक्यों ने मेरे जीवन में अनुकरण करने का प्रत्यत्न किया....और अद्‌भुत चमत्कार हुआ।

जो मुझे सिर्फ अवास्तविक, काल्पनिक लगता था,

वह वास्तविक बनकर जीवन में आया, तब अकल्पनीय, अवर्णनीय आत्मिक आनंद मिलने लगा।

अलग ही दुनियां का अनुभव होने लगा.... अभी तक कभी भी अनुभूति नहीं हुई हो ऐसी शांति, समता की अनुभूति हुई।

हृदय - आत्मा - मन में बहुत आनंद होने लगा।

अब तक जैनधर्म के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं थी, परंतु इस पुस्तक के वांचन के बाद ऐसा हुआ कि जैनधर्म के पूज्य आचार्य भगवंत ने आत्म-हृदय-मन के भावों में आमूल परिवर्तन लाने वाली इतनी सुंदर पुस्तक लिखी है, तो जैन धर्म में भी ऐसे अनेक तत्व होंगे ही कि जो मुझे बहुत अच्छे लगेंगे।

अतः मेरे उस जैनमित्र के साथ मैं भी उपाश्रय में चातुर्मास विराजमान प.पू.मुनिराज (आचार्य) श्री हेमप्रभविजयजी म.सा. के पास अवर-नवर जाता था और उनके पास से जैनधर्म की पुस्तक और खास तो प.पू.आ.भगवंत श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. श्री की पुस्तक पढने के लिए लाता।

पूज्यश्री की जितनी भी पुस्तक पढ़ता वह बहुत-बहुत अच्छी लगती, आत्मा-हृदय-मन की गहराई तक जाकर उसे आत्मसात् करता।

एक दिन पुस्तक पढते ही मन में भाव-इच्छा हुई कि इतना सुंदर, अकल्पनीय सद्‌साहित्य का सर्जन करने वाले को एकबार पत्र लिखकर मेरे मन के भाव और उनके सद्‌साहित्य के वांचन से मेरे जीवन, हृदय, विचार में आये हुए परिवर्तन को और उनसे मिली अनंत आत्मीय शांती, अनुभव की जानकारी दू।

मन में ख्याल था कि इतना सुंदर लिखने वाले, उच्च कोटि के गुरूभगवंत के पास तो मेरे कागज (पत्र) का जवाब लिखने के लिए समय ही नहीं होगा। उनके लाखों श्रावक-भक्त होते है, तो मुझे तो पत्र का कोई जवाब मिलने वाला नहीं है।

बस, इसी भाव के साथ, कोई भी प्रत्युत्तर की अपेक्षा के बिना, मेरे मन की

इच्छापूर्ति के लिए मैंने पू.आचार्य भगवंत श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. श्री को उनकी पुस्तकों के वांचन से मुझे जो अनुभूति हुई, विचार-परिवर्तन हुआ उस विषय में लगभग सात पन्ने का विस्तृत पत्र मुंबई रत्नत्रयी ट्रस्ट के एड्रेस पर लिखा। उस समय पूज्यश्री का चातुर्मास मुंबई में था।

पत्र लिखकर मेरे मन के विचारों को पूज्यश्री के पास प्रगट करने का एक अलग ही आनंद था।

उनका प्रत्युत्तर कभी आयेगा, ऐसी कल्पना, विचार भी नहीं किया था।

और हाँ, सच कहूँ तो, मन में इस बात का संशय था कि - इतने उच्च कोटि के उच्च पद पर बिराजित, उच्च कोटि का सद्साहित्य का वर्णन करते पू.आ. गुरूभगवंत मेरा पत्र उनकी इतनी व्यसस्ता के बीच पढ़ेगे या नहीं? परंतु, मेरे चंचल मन की सभी गिनती गलत निकली।

मेरे पत्र को पोस्ट करने के छट्ठे दिन ही पूज्यश्री का हस्त लिखा पत्र मिला। मैं तो पागल ही हो गया। आत्मा-हृदय-मन यह बात स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे। आँखो में से हर्षाश्रु बहने लगे।

पूज्यश्री की कृपादृष्टि, आशीर्वाद, वात्सल्य से मैं बहुत भीग गया। पूज्यश्री ने उनका सद्साहित्य मुझे नियमित मिले इसके लिए मुझे उनका (सद्साहित्य का) आजीवन प्रशंसक बना लिया।

पूज्यश्री की सरलता, सहजता, निर्मलता, मेरे जैसे अजैन व्यक्ति को भी कोई संबंध के बिना, इतनी व्यस्तता के बीच भी तुरंत प्रत्युत्तर, आशीर्वाद देने की भावना ने मुझे बहुत गद्गद् किया। मेरे जीवन का टर्निंग पोईन्ट कहो या परिवर्तन की शुरुआत -

'प्रेमसभर पत्रमाला' पुस्तक का वांचन प.पू. मुनिराज (हाल आचार्य) श्री हेमप्रभवियजी म.सा. श्री तथा प.पू. आचार्य श्री रत्नसुंदरसुरीश्वरजी म.सा. श्री की आत्मीयता, सहदयता, सरलता, सहजता, निर्मलता! छोटे से छोटे व्यक्ति को देने में आता महत्व.... इन सभी का मुझ पर बहुत गहरा असर हुआ। चातुर्मास मे रहे प.पू. मुनिराज (हाल में आचार्य) श्री हेमप्रभविजयजी म.सा. श्री का विहार हुआ, वियोग से बहुत दुःख हुआ।

पूज्यश्री ने मुझे बहुत चिंतनीय पुस्तक वांचन के लिए दी थी। पूज्यश्री के

विहार के बाद भी मन में हुआ कि पूज्यश्री के साथ सतत संपर्क में रहना है।

इससे.... पूज्यश्री जहाँ भी होते मैं उनको तथा पू. आचार्य भ. को नियमित पत्र लिखता, और दोनों पूज्यश्री के अचूक समयसर जवाब मिलते....

अब तो प.पू. मुनिराज (हाल में आचार्य) श्री हेमप्रभविजयजी म.सा. को ख्याल आ गया है कि मुझे इस सद्साहित्य वांचन का बहुत ही शौक है। मुझे अच्छा लगता है।

इसलिए पूज्यश्री जब भी कोई श्रावक-श्राविका मेरे गाँव मे आते तब उनके साथ पूज्यश्री अचूक पहले के पुस्तक, अन्य अमूल्य-चिंतनीय सद्साहित्य भेजते। और इस तरह मेरे वांचन के शौक को पुष्टि मिलती गई।

श्री हेमरत्नसूरीश्वरजी म.सा. श्री द्वारा प्रकाशित 'अर्हम् प्रेरणापत्र' मासिक बहुत ही अच्छा लगता, जिसका आजीवन सभ्य प.पू. मुनिराज (हाल में आचार्य) श्री हेमप्रभविजयजी म.सा. के द्वारा बना। और वो नियमित मिलता। उसमें आती 'प्रार्थना, संवेदना' हृदय-आत्मा को छूती।

जैसे-जैसे मेरा वांचन बढता गया, वैसे-वैसे मैं जैन धर्म के पारिभाषिक शब्दों से परिचित होता गया।

शुरुआत में सिर्फ प.पू. आचार्य म.सा. श्री का ही सद्साहित्य पढना अच्छा लगता। परंतु फिर धीरे-धीरे अन्य पू. महात्माओं का सद्साहित्य भी अच्छा लगने लगा।

घर में सबसे छोटा, लाडला होने से दूसरी कोई भी जवाबदारी नहीं होने से मेरे वांचन के शौक की पूर्ति होती। परिवार के हरेक सभ्यों का मुझे हमेशा सहकार सहयोग मिलता। मुझे कभी किसी ने रोका नहीं, अटकाया नहीं। यह सचमुच, मेरे गतजन्म का कोई पुण्य या ईश्वर-पूज्यश्रीओं के आशीर्वाद से ही शक्य बना।

जीवन सरलता से, आनंदपूर्वक, सद्साहित्य के सतत रसास्वाद से पसार हो रहा था, कोई भी सांसारिक, व्यवहारिक जवाबदारी के बिना।

वहाँ मेरे जीवन में एक भूंकप आया। एक रात अचानक ही किसी भी तकलीफ के बिना मेरे पू. मम्मी, जो मेरे लिए सर्वस्व थी उन्हें हार्ट अटेक आते ही अचानक 5-10 मिनिट में ही हम सभी को छोड़ के चली गई। घर में 3 डॉक्टर (मेरे पिताजी, मैं, बहन) होते हुए भी, कुछ ना कर सके। बहुत ही धार्मिक

स्वभाव तथा जीवनभर सतत कार्यों को करते हुए ईश्वर का नाम स्मरण करने वाली मेरी मम्मी कोई भी शारीरिक तकलीफ के बिना हंसते-हंसते ईश्वर का नाम लेते-लेते मृत्यु को प्राप्त हुई।

मैंने जीवन में 'मृत्यु' नाम सिर्फ सुना था। कभी 'मृत्यु' को इतने नजदीक से देखने का मौका नहीं मिला था।

जीवन में सर्वप्रथम 'मृत्यु' किसे कहा जाता है वह बहुत नजदीक से देखा। मेरे जीवन में सर्वस्व 'माँ' की बिदाई को मैं स्वीकार नहीं कर सका था।

मन, हृदय, मस्तक में विचारों का तूफान आया.... ईश्वर प्रभु ने मेरे सामने नहीं देखा। मन में रहे आक्रोश को प्रभु के आगे शब्दों के द्वारा जारी किये। जिसमें से थोड़े अंश, उस समय के हृदय के भावों को यहाँ शब्दों के द्वारा पेश कर रहा हूँ।

''प्रभु....हमारा क्या गुनाह था कि आपने इतनी बड़ी सजा दी?

प्रभु.....इसका जवाब आपको देना ही पड़ेगा.... प्रभु..... क्या आपको हमारा विचार भी नहीं आया....

''माँ'' रहित यह संतान क्या करेंगे?

प्रभु..... हमारा क्या गुनाह था यह कहो?

और हमारी ''माँ'' का भी क्या गुनाह-पाप था कि आपने इस तरह इतनी जल्दी उसे अपने पास बुला लिया?

हमारी माँ ने तो सतत जनम से ही आपका सतत स्मरण किया था। तो फिर क्यूं इस तरह आपने बुला लिया?

प्रभु..... हमको माँ की अभी बहुत जरूरत थी।

प्रभु..... आपके प्रति, आपके हरेक कार्य में पूर्ण श्रद्धा-विश्वास रखा है तो फिर भी आपने ऐसा क्यूं किया.....?

प्रभु मेरे प्रश्नों का जवाब दो.....

मुझे अब ''माँ'' का प्यार कौन देगा?

अब मैं किसकी गोदी में शांति से सोऊँगा?

प्रभु..... आप ऐसे मौन हो जाते हो तो कैसे चलेगा? मेरे प्रश्न का जवाब दो।

प्रभु....ऐसी तो मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी। प्रभु.....आप इतने निष्ठुर हो जाओगे उसकी कल्पना भी नहीं थी।

प्रभु..... इस बात का स्वीकार करना मेरे लिये शक्य नहीं है।''

पू. मम्मी की अचानक, अकाल मृत्यु होने से मैं बहुत निराश बन गया था। इस मुश्किल समय में प.पू. आचार्य तथा प.पू. मुनिराज (हाल में आचार्य) श्री हेमप्रभविजयजी म.सा. श्री के द्वारा सतत सद्साहित्य मिला, जो मन को शांति दे रही थी तथा मृत्यु को स्वीकारने के लिए पूज्यश्री को दो अद्भुत पुस्तक 1) मृत्यु जब खुद मरती है। 2) मौत का पडकार, मौत का पडकार.....

पढने को मिली, बहुत ही अच्छा लगा। मन का उद्वेग शांत हुआ.....समाधि मिली।

सतत पूज्यश्री के पत्र, मार्गदर्शन, प्रेरणा और सद्साहित्य के वांचन से मैं इस आघात में से बाहर आने लगा।

मेरे क्लीनिक के पीछे ही उपाश्रय होने से, अवार-नवार चातुर्मास दरम्यान या विहार में आते प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतों को कोई तकलीफ होती तो मुझे बुलाते थे।

ऐसे मैं नये-नये प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतों के संपर्क में आने लगा। शुरुआत में मन में बहुत शर्म, संकोच होता और मन में सतत यह विचार आता कि एक अजैन होकर जैनों के उपाश्रय में, उनके प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतों के वंदनार्थ जाता हूँ....परंतु धीरे-धीरे शरम संकोच दूर होने लगा और वहाँ के सभी जैन भी मुझसे परिचित होते गये।

सद्साहित्य के वांचन से मैंने अनेक बार ओपन-बुक-एक्जाम भी दी और ईश्वर कृपा और सभी के पुण्य से बहुत बार एक्जाम में अच्छे नंबर भी प्राप्त हुए .... ऐसे मुझे सतत नया नया साहित्य, ओपन बुक एक्जाम पूज्यों की कृपा से मिलते रहे।

एकबार प.पू. पंन्यास गुरूभगवंत श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.सा. श्री की अमूल्य चिंतनीय पुस्तक 'बेन। तुं संस्कृति तरफ पाछी फर।' की ओपन बुक एक्जाम दी। उसमें 1 से 10 नंबर लगा। मैं ''मुक्तिदूत'' मासिक का भी मेम्बर बना। प.पूज्य पंन्यासश्री का देश, धर्म, संस्कृति, युवानों को स्पर्शते सद्साहित्य के वांचन के द्वारा मन-हृदय में देश-धर्म-संस्कृति के लिए कुछ करने का उत्साह उत्पन्न होता....उनका साहित्य पढकर खून खौलता।

इस तरह वांचन की भूख दिन-प्रतिदिन बढती गई और सर्व पूज्यों की तरफ से मिलते सद्साहित्य से वह भूख तृप्त होती।

सद्साहित्य का वांचन करते-करते जो भी विचार, प्रश्न, अनुभूति या वांचन के बाद आये विचार परिवर्तन से मैं पुस्तक के लेखक को मेरे मनोभाव के साथ पत्र लिखता। और मेरी कल्पना, अपेक्षा के बिना मुझे सभी ही पूज्यों की तरफ से अपार आशीर्वाद, वात्सल्य के साथ जवाब मिलता। और ऐसे, मैं सतत नये-नये प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतों के संपर्क में आने लगा। जैसे-जैसे पूज्यश्री का संपर्क बढ़ा, वैसे-वैसे मुझे उनकी तरफ से नया-नया सद्साहित्य पढने को मिला। मुझे जिन जैन पारिभाषिक शब्दों की जानकारी नहीं थी, उनकी समझ अवार- नवार रूबरू अथवा पत्र के द्वारा पूज्यश्री के पास से लेता। सद्साहित्य के वांचन में मैं इतना गहरा उतर गया था कि उसमे मैं मेरी पू. मम्मी के विरह दुःख को भूल जाता.... मन में एक प्रकार की शांति का अनुभव मिलता। स्वभाव, व्यवहार, विचार, हृदय और जीवन में धीरे-धीरे अकल्पनीय परिवर्तन आने लगा।

एक समय बहुत तूफानी जिद्दी, स्वयं का इच्छित ही करने वाला, झगडा करने में होशियार ऐसे मेरे स्वभाव में शांति, सौम्यता, सरलता, सहजता, सहृदयता आने लगी।

मैं दो ही कार्य करता- क्लीनिक जाता और उसके सिवाय के समय में सतत नया-नया सद्साहित्य का वांचन करता। कोई भी व्यवहार, कुटुंब की आर्थिक कोई भी जवाबदारी नहीं थी।

घर की संपूर्ण जवाबदारी मेरे पू. बड़े भाई ने उठाई। कोई भी बैंक का छोटा सा काम या फोर्म भरने का भी मुझे नहीं आता और कभी मेरे भाग में भी नहीं आता। जीवन बहुत आनंद-उल्लास के साथ वांचन करते-करते सरलता से पसार हो रहा था।

परंतु ईश्वर-कुदरत को वहं मंजूर नहीं था। एक दिन सुबह किसी बिमारी या तकलीफ के बिना मेरे बड़े भाई का हार्ट अटैक से 5 मिनिट में ही घर में हमारे सभी के सामने देहांत हुआ। बहुत ही सरल, सेवाभावी स्वभाव वाले ! निस्वार्थभाव से सबका भला करने वाले !

और हम सब मूक बन यह घटना देखने के सिवाय कुछ कर ही ना सके।

समय घर में मेरे पू. पिताजी, भाभी, मेरी धर्मपत्नी, भाई का लड़का (8 वर्ष) सभी को संभालने की जिम्मेदारी आ गयी। परंतु ईश्वर कृपा और सर्व पूज्यों के आशीर्वाद से मुझे उस समय ऐसी हिम्मत, सहनशक्ति प्राप्त हुई कि उस विकट परिस्थिति में भी मैं स्वस्थ रह सका।

जीवन में मृत्यु को इतनी नजदीक से दूसरी बार देखी। अब तक घर की संपूर्ण जवाबदारी, व्यवहार, आर्थिक मेनेजमेंट सब बड़े भाई ही करते थे। मैंने कभी भी यह सब किया नहीं था, कुछ आता भी नहीं था। और एकदम अचानक सारी जवाबदारी मुझ पर आ गई। कुटुंब को संभालना, भाभी को, भाई के लड़के को हिम्मत देनी। पूरा व्यवहार और साथ में आर्थिक जवाबदारी.... सद्साहित्य के वांचन से, बाहर से बहुत हिम्मत रखकर सर्व को आश्वासन देता।

परंतु धीरे-धीरे 4-5 दिनों में वास्तविकता सामने आने लगी। सभी जगह निर्णय लेने, व्यवसाय संभालना और मेरा क्लीनिक।

सर्व पूज्य भगवंतों के आशीर्वाद और सद्साहित्य के वांचन से, ईश्वर के प्रति संपूर्ण श्रद्धा-विश्वास था कि प्रभु..... निश्चित मुझे योग्य मार्ग बतायेंगे। इसलिए हुआ कि मेरे मनकी सभी उलझने एकबार प्रभु को पत्र लिखकर बता दूँ। उस समय, हृदय के भावों से उत्पन्न शब्दों से परमात्मा को एक पत्र लिखा.... जिसे अक्षरशः यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

परम कृपालु परमात्मा,

'मृत्यु'
सिर्फ ढाई अक्षरों का समूह
हरेक के जीवन में यह समूह आता ही है।
और
विशेषतः
स्वजनों के जीवन के सभी समीकरण छिन्नभिन्न कर देता है।
सिर्फ, क्षण के सूक्ष्म भाग में
जीव, मनुष्य कितना लाचार है....।
कुछ भी नहीं कर सकता.....
मूक बनकर स्वीकारने के सिवाय....

क्या,
यही इस जिंदगी की सच्ची, सच्ची वास्तविकता हैं?

तो फिर.....

क्यूं मनुष्य भौतिक सुख-संपत्ति-समृद्धि के पीछे अंधी दौड़ करता है?
क्यूं 'मृत्यु' को निश्चितता से स्वीकार करता नहीं है?
क्यूं जिदंगी के हरेक क्षण में सिर्फ एक ही 'अवश्यभावी' मृत्यु को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है?

जैसे जिदंगी को महोत्सव बनाने के लिए सतत प्रयत्न करता है, परंतु जिदंगी की एकमात्र वास्तविकता 'मृत्यु' को महोत्सव बनाने का प्रयत्न या प्रयास क्यूं नहीं करता?

क्यूं मृत्यु को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है?

क्यूं मनुष्य 'मृत्यु' से दूर भाग रहा है? आने वाले समय का कोई भरोसा नहीं है, सिर्फ उसे स्वीकारने के सिवाय... एक क्षण के बाद क्या होने वाला है? वह भी जानना शक्य नहीं है। मनुष्य कितना लाचार, छोटा पड़ रहा है परमकृपालु परमात्मा के सामने। यह सब जानते हुए भी, मनुष्य खुद का अहम्-अभिमान छोड नहीं सकता।

संपत्ति, भौतिक सुख
परिवार, स्वजन,
सभी को यहाँ छोड़कर जाना है।
मनुष्य से दुनियां में कुछ नहीं होता....
सब ही,
अपने कर्म के अनुसार ही होता है....
तो फिर
हम जिसमें परिवर्तन नहीं कर सकते,
फिर उसका सहर्ष स्वीकार क्यूं नहीं कर सकते?
अपने नहीं स्वीकारने से परिस्थिति में कुछ फेरफार, बदलाव होने वाला नहीं है या अपने दुःख व्यक्त करने से, रोने से या आक्रंद करने में उस परिस्थिति में सहज भी बदलाव करने की ताकत अपनी है ही नहीं।

कोई क्षमता ही नहीं है
तो फिर
क्यूं?
उस परिस्थिति में हिम्मत रखके
परमकृपालु परमात्मा के प्रति
संपूर्ण समर्पणभाव के साथ
उसकी इच्छानुसार हमको चलना।
कोई भी प्रतिकार, संघर्ष के बिना ही....।
प्रतिकार, संघर्ष से हम तकदीर को बदल नहीं सकते
परंतु,
हम अपने आप को ही अधिक दुःखी करते है।
जीवन की किसी भी परिस्थिति में
ईश्वर को कहना कि
'हे प्रभु ! यह सब आपने दिया है'
और आपको ही समर्पण करता हूँ।
इन सभी का मेनेजमेंट आपको ही करना है।
दुन्यवी मानव क्या मेनेजमेंट कर सकता है?
ईश्वर तो विश्व का सर्वश्रेष्ठ
एम.डी. मेनेजिंग डायरेक्टर है।
उनके आगे तो हमारे जैसो का क्यां ?
हे ईश्वर,
मैं तो एक निमित्त मात्र हूँ।
हम सबकी डोरी तो आपके हाथ में है।
जेसे कठपूतली के खेल में
सभी कठपुतलीओं की डोरी जिसके हाथ में है वह सूत्रधार अपनी, इच्छा से कठपुतलियों को नचा सकता है।
उसमें कठपूतलियों की ईच्छा का कोई महत्व नहीं होता।
सूत्रधार के अनुसार ही,

सर्व कठपूतलियों को खेल करना पड़ता है,

नाच नाचना पड़ता है,

बस,

जीवन की कोई भी परिस्थिति जो चाहे अच्छी हो या खराब उसे देखना पड़ता है

तो,

जीवन की कोई भी परिस्थिति में,

सुख या दुःख में भी,

हर्ष-शोक नहीं होता।

अपने मन की समता बनी रहती है।

जीवन में कभी भी नेगेटिव नहीं विचारना है।

हमेशा सकारात्मक विचारना है।

संपूर्ण श्रद्धा के साथ

ईश्वर को संपूर्ण समर्पणभाव के साथ सब सौंप देना है।

और उसे कहना है कि -

हे प्रभु,

आपकी ईच्छा हो उसके अनुसार मेरे जीवन का मेनेजमेंट करना.....

मेरे जीवन के सभी अधिकार आपको सौंपे है।

और,

मुझे आप में संपूर्ण श्रद्धा, विश्वास है कि आप जो करेंगे, वह मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ होगा। क्योंकि उस परिस्थिति में शायद क्षणिक दुःखी भी हो जाऊँ !

पर,

मेरे पास तो सिर्फ धर्मचक्षु ही है।

और आपके पास तो दिव्यचक्षु है।

हे परमात्मा,

आज से मेरी पूरी जिदंगी आपको समर्पित करता हूँ। मेरे जीवन का संपूर्ण मेनेजमेन्ट आपको करना है। मैं आज से सर्व प्रकार की चिंता, उपाधि से मुक्त हूँ। विश्व के सर्वश्रेष्ठ एम.डी. के हाथ में मेरी संपूर्ण जिंदगी वहीवट सौंपने के बाद मैं

एकदम फ्री हो गया हूँ।

हाँ,

हे प्रभु,

आप आपके मेनेजमेंट में बराबर ध्यान देना। नहीं तो, संपूर्ण जगत आपको दोष देगा। आपकी हरेक प्रेरणा के अनुसार ही मैं कार्य करुँगा। मेरे हरेक कार्य के पहले मैं आपको आगे करुँगा। सर्वस्व आपको समर्पित करके मैं एक प्रकार की अनंत शांति का अनुभव कर रहा हूँ। मेरे हरेक कार्य, आज से आपको ही पूरे करने है। अभी से कोई भी मेनेजमेंट की चिंता आपको ही करनी है, मुझे तो नहीं ही हाँ? इस तरह परमात्मा को पत्र लिखकर सभी जवाबदारी, चिंता से मुक्त हो गया। और देव-गुरू कृपा से मेरे सभी कार्य किसी भी प्रकार की मुश्किलो के बिना, कष्ट के बिना सरलता से, सहजता से, हो जाते थे।

पू. बड़े भाई की मृत्यु के 6 महिनें पहले मुझे एक दिन सुबह उठते ही एक अचिन्त्यशक्ति के द्वारा मन, हृदय में ऐसे भाव उत्पन्न हुए कि, श्री श्रुतदेवी माता की विशेष आराधना, सेवा करने के लिये, ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय करने के हेतु कुछ करना है और अचानक कोई अदृश्य शक्ति की प्रेरणा हुई कि -

घर में श्री सरस्वती माता का 'श्री श्रुतदेवी मंदिर' तथा ज्ञानभंडार बनाना। श्रुतदेवी मंदिर में माँ श्री सरस्वीती देवी की अलग-अलग प्रतिमाजी, फोटो, अलग अलग यंत्र, प्रार्थना, स्तवन, गीत तथा सर्व उनको लगते सद्साहित्य का युनिक कलेक्शन करूं और ज्ञानभंडार में सभी यहाँ आते प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतो को अभ्यास के लिए उपयोगी सद्साहित्य का कलेक्शन करुं....'

श्रुतदेवी मंदिर और ज्ञानभंडार शुरू करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि - कोई भी सत्कार्य, सद्वांचन करने की प्रेरणा, भाव आत्मा-हृदय-मन मे से उत्पन्न होनी चाहिए और वह माँ श्री सरस्वती की कृपा - आशीर्वाद के बिना शक्य ही नहीं है। इससे मन में हुआ कि माँ श्री सरस्वतीदेवी को सतत-नियमित आराधना, जाप करना है। जिससे बुद्धि की निर्मलता रहे और सद्कार्यों के विचार आते रहे।

मेरे जीवन में सद्साहित्य के वांचन से आये विचार, हृदय, जीवन में परिवर्तन के द्वारा मैंने जो अकल्पनीय शांति, समता, समाधि का अनुभव किया है उसे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाऊँ।

श्री सरस्वती माता की विशेष आराधना और ज्ञानभंडार के कार्य के द्वारा मुझे मेरे अनंतानंत जन्मों के अनंत ज्ञानावरणीय कर्मों को क्षय करने की भावना। सद्साहित्य पर अनेक ओपन बुक एक्जाम होती है और वहाँ एक्जाम लेकर लोगों को वांचन करने की प्रेरणा करु।

और मेरा खुद का स्वार्थ कि - घर में ज्ञान भंडार होने से सतत, अविरत, नये-नये सद्साहित्य के चिंतनो का अद्वितीय लाभ मिलता रहे और मेरे ज्ञान की भूख को तृप्ति मिले।

जैसे अपने शस्त्रों मे कहा है कि अच्छे विचारों का अमल तुरंत करो। और मुझे यह विचार आते ही सर्व पू. गुरूभगवंतों के आशीर्वाद, मार्गदर्शन, प्रेरणा लेकर संवत 2064 - संवत्सरी के दिन घर में 'श्रुतदेवी मंदिर ज्ञानभंडार' का शुभ प्रारंभ किया।

किस तरह कार्य करुँगा या ज्ञानभंडार में सद्साहित्य कहाँ से लाऊँगा- रखूँगा - संभालूँगा, कुछ ख्याल नहीं था।

हा, परंतु मुझे परम कृपालु परमात्मा और सर्व प.पू. गुरूभगवंतों के ऊपर अटूट श्रद्धा-विश्वास था कि - उनके मुझ पर अपार आशीर्वाद, कृपा, करुणा, वात्सल्य है ही तो मेरे लिए कोई भी कार्य अशक्य असंभवित नहीं है। और अंतिम 4 वर्ष में श्रुत देवी मंदिर- ज्ञानभंडार का कार्य बहुत ही व्यवस्थित चल रहा हैं।

किसी भी प्रकार की तकलीफ के बिना - विकट कार्य भी देव-गुरू की कृपा से सरलता और सहजता से हो जाते थे।

श्रुतदेवी मंदिर, ज्ञानभंडार तथा पूज्यों की वैयावच्च के कारण बहुत से पू. साधु-साध्वीजी के संपर्क में आने लगा।

ख्याल नहीं परंतु उनको मिलकर दर्शन-वंदन, आशीर्वाद-वात्सल्य पाकर एक प्रकार की शब्दातीत परम शांति, समता का अनुभव हुआ और पूज्यों के पास से सतत आराधना, जाप, ज्ञानभंडार के लिए नयी-नयी प्रेरणा सतत रहती।

सद्साहित्य वांचन के दरम्यान रात्रिभोजन त्याग और कंदमूल त्याग के लिए भी बहुत सद्साहित्य पढे, परंतु कोई मेरे भारी कर्मों के कारण कभी भी मन-हृदय-आत्मा में ऐसा भाव नहीं जगता कि मैं रात्रिभोजन तथा कंदमूल त्याग करुं।

परंतु दो वर्ष पहले यहाँ चातुर्मास के लिए पधारे प.पू. गुरूभवगंत श्री

भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के ग्रुप के पू. साध्वीजी भगवंत (प.पू.श्री ठाणा) की प्रेरणा से मन-हृदय-आत्मा में रात्रिभोजन तथा कंदमूल के प्रति घृणा उत्पन्न हुई और उनके द्वारा होती अनंतानंत सूक्ष्म जीवों की हिंसा से बचने के लिए एक ही विचार में रात्रिभोजन, कंदमूल त्याग का पच्चक्खाण ले लिया।

भूतकाल में मेरे लिये जो असंभवित-अशक्य लग रहा था वह देव-गुरु की कृपा से क्षण में ही शक्य बन गया।

बचपन में ही सतत आलू ही खाने वाला तथा बड़ा होने के बाद सभी में लसण, गाजर, बीट का उपयोग करता। अब तो उनका विचार करते ही आँखों में से आँसु टपकने लगते है और विचार आता है कि मैंने अनंती बार कंदमूल बहुत आनंद उत्साह के साथ खाया और उसके द्वारा अनंतानंत जीवों की हिंसा में निमित्त बनकर बहुत कर्म बांधे।

पता नहीं कब मेरे भारी कर्मों का नाश होगा। रात्रिभोजन त्याग सचमुच मेरे लिए अशक्य ही था क्योंकि क्लीनिक से रात को 9.00 बजे के बाद आकर ही भोजन लेता था।

परंतु सचमुच मन-हृदय-आत्मा से यह भावना की कि अब रात्रिभोजन त्याग करना ही है। तो देव-गुरूकृपा से ऐसी परिस्थिति हुई कि अब मैं सरलता से नियमित रात्रिभोजन का त्याग करता हूँ।

इतना ही नहीं, अभिमान के साथ नहीं परंतु सच्चे हृदय की भावना और देव-गुरू की कृपा से कुछ भी अशक्य नहीं है वह बताने के हेतु लिख रहा हूँ कि पिछले डेढ साल में सिर्फ रात्रिभोजन त्याग ही नहीं, परंतु नियमित चोविहार भी करता हूँ।

संसार में अनेक बार ऐसी परिस्थिति व संयोग बनते है कि तब होता है कि

'रात्रिभोजन / कंदमूल त्याग किस तरह शक्य बनेगा?'

परंतु देव-गुरू की असीमकृपा मुझ पर बरस रही है।

विकट परिस्थिति में भी मेरा नियम पक्का ही रहता है।

चातुर्मास में पधारे हुए साध्वीजी म.सा. की प्रेरणा से, आशीर्वाद से अनंतानंत भव में किए अनंतानंत गुनाह के प्रायश्चित के लिये भव आलोचना जीवन में पहली बार - हम तीन - मैं, श्राविका और सात वर्ष की बेबी ने (लड़की ने) ली।

प.पू. आचार्य भगवंत श्री अभयशेखरसूरीश्वरजी म.सा. श्री के आगे जितने स्मृति में आए, जानते-अजानते छोटे-बड़े अपराधों, दुष्कृत्यों की आलोचना ली। भवआलोचना लिखने के बाद और पूज्य आचार्य भगवंत म.सा. का प्रायश्चित आने के बाद एक प्रकार की अवर्णनीय, शब्दातीत परम आत्मीय अलौकिक शांति का अनुभव करते है। जैसे किसी गधे के उपर बहुत ही वजन रखा हो और बाद में कोई वजन उठा ले तो कैसी परमशांति का अनुभव करते है, वैसा ही अनुभव होता है।

पूज्य आचार्य भगवंत के द्वारा दिया हुआ प्रायश्चित चालू है।

पूज्यश्री को यही प्रार्थना करते है और इतनी समझ प्राप्त करने के बाद स्मृति में रहे हुए गुनाहों का प्रायश्चित मांगते है।

आपश्री हमको अनंतानंत जन्म में किये हुए अनंत गुनाह, दुष्कृत्यों की जो बड़ी सजा है - प्रायश्चित है वह भी देना। पता नहीं पुनः मानवभव मिले या नहीं।

और शायद मिले तो भी आप सभी प.पू. गुरूभगवंतों का सान्निध्य, आशीर्वाद, वात्सल्य मिलेगा या नहीं.....? और वे सभी योग मिलने पर भी मेरे मन में सभी दोषों, दुष्कृत्यों के प्रति घृणा होगी या नहीं? यह बड़ा प्रश्न है।

प्रायश्चित में आये अट्ठम, छट्ठ, उपवास, आंयबिल करते हुए जब भी शारीरिक कष्ट पड़ता है तब मन में विचार करता हूँ कि 'अनंतानंत जन्म तक हर पाप, गुनाह, दुष्कृत्य बहुत आनंद, उत्साह के साथ किया था, और वो करने के पश्चात् जरा भी अफसोस या दुःख नहीं हुआ, बल्कि आंनद ही हुआ है।

सचमुच, हे आत्मन् ! आपके द्वारा किये गये पापों के सामने यह प्रायश्चित तो सिर्फ अंश मात्र है।

पूज्यश्री आचार्य भगवंत ने स्वयं के कोमल, सरल, स्वभाव के कारण मेरे गुनाहों का कुछ भी प्रायश्चित नहीं दिया है। नरकगति में अनंतानंत कष्ट सहन करने पर भी जीव पुनः भ्रमण करके जीवित होता है तो यह कष्ट तो उसके प्रमाण में कुछ नहीं हैं।'

अब तक अनेक प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतों के संपर्क में आया हूँ। उनकी सरलता, निर्मलता, सहजता, आत्मीयता, छोटे से छोटे उपकार की भी लंबे समय तक अनुमोदना यह सब स्मृति में रहते हैं।

छोटे से छोटा व्यक्ति फिर वह जैन हो या अजैन उसके प्रति अविरत कृपा दृष्टि, करुणा, वात्सल्यता, निःस्वार्थभाव से सदा अन्य का भला करने की भावना किसी भी व्यक्ति को आध्यात्मिक क्षेत्र में मोक्षमार्ग में आगे बढाने का हृदय पूर्वक का प्रयास..... ऐसे उच्च कोटि के गुण वाले प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतो को कोटि-कोटि वंदना!

जैनधर्म की एक एक क्रिया, आराधना, तपश्चर्या के पीछे गूढ वैज्ञानिक अभिगम छुपे है।

कभी मुझे मन-हृदय में सतत विचार आते है कि -

सचमुच मुझ में ऐसी कोई योग्यता-पात्रता ही नहीं है।

अनंतानंत दोष, अवगुणों से मैं व्याप्त हूँ, फिर भी

अनेक प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतो की अविरति कृपादृष्टि मुझ पर बरसती है।

वह कोई मेरे गत जन्म का ऋणानुबंध होगा या मेरे गत भवों का कोई पुण्योदय होगा..... मुझे पूज्यश्री के अनंतऋण से मुक्ति मिलनी अशक्य है, पर उसके लिए शक्य दोषों को मेरे जीवन में से निकालकर आंशिक पात्रता-योग्यता तो प्रगट करू और मन में स्तवन की पंक्ति अश्रुओं के साथ याद आती है।

''अवतार मानवीनों फरीने नहीं मले, अवसर तरी जवानों फरीने नहीं मले, आ मव्या छे सद्गुरू फरीने नहीं मले।''

'पुनः भवोभव के चक्र में कभी मानवी का भव मिलेगा या नहीं और मानव भव में जन्म मिलने पर भी उतनी समझ या पूज्य श्री का आशीर्वाद मिलेंगा या नहीं?'

यह शंकास्पद विषय है। इसलिए, इस मानवभव को ज्यादा से ज्यादा उत्कृष्ट आराधना में पसार करुं।

जन्म से तो जैन नहीं हूँ,

परंतु, मेरे कर्म से, धर्म से सच्चा जैन, सच्चा मानवी बनने का प्रयत्न तो करुँ। कभी तो मन में विचार आता है कि 'अमूल्य चिंतनीय अगाधश्रुत का वारसा हमको मिला है।

और इस मानवभव में वह सब पढने की तीव्रतम भावना हुई इसलिए हे

परमकृपालु परमात्मा ! आप मेरे लिऐ 24 घंटे के दिन को 48 घंटे का कर दो। हम क्षण का भी प्रमाद करें बिना अविरत अमूल्य, चिंतनीय ज्ञान के पियूष को जानें-मानें, अनुभव करे, हृदयस्थ और आत्मस्थ करें....'

परम कृपालु परमात्मा,

और

सर्व पूज्य गुरुभगवंतो को यही प्रार्थना कि -

* इस जीवन - मानव भव में अविरत श्रुतज्ञान की आराधना, जाप, सेवा कर सकूँ।

* अधिक लोगों तक सद्साहित्य का प्रचार कर सकूँ। और उस श्रुत सेवा के द्वारा मेरे सर्व ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय कर सकूँ।

* सर्व प.पू. साधु-साध्वीजी भगवंतो की सेवा-वैयावच्च कर सकू। और उन सर्व पूज्यों के अविरत आशीर्वाद, कृपादृष्टि, वात्सल्य प्राप्त कर सकूँ ऐसी मेरी योग्यता-पात्रता प्रगट करुँ।

* स्वदोषदृष्टि और परगुणदृष्टि को प्राप्त करुं।

* जगत के जीवमात्र को प्रभु वीर की भांति अविरत प्रेम, करुणा, क्षमा देने में सक्षम बनूँ।

* अगले भव में मुझे यदि मानवभव मिले तो जैन कुल में जनम मिले ..... और मैं सर्वविरति का पंथ ले सकूँ।

मेरे इस लेख में कोई भी जीव को जरा भी दुःख, हृदय को ठेस पहुँची हो तो मन, वचन, काया से हृदयपूर्वक पश्चाताप के अश्रु के साथ 'मिच्छामी दुक्कडम्' क्षमापना मांगता हूँ।

एक अजैन श्रावक के कोटि कोटि वंदन....!

मेरे उपर अनेक प.पू. साधु-साध्वीजी गुरूभगवंतों के अविरत, आशीर्वाद, कृपादृष्टि, वात्सल्य, मार्गदर्शन, प्रेरणा का प्रवाह बहता रहता है। उन सभी के नामों का आलेख करने की तीव्रतम भावना होने पर भी, कहां कोई पूज्यश्री का नाम मेरी मंदगति के कारण मैं भूल जाऊँ तो उनके लिए सर्व के नाम नहीं लिखें.... सर्व पूज्यों के चरणों में कोटि कोटि वंदना के साथ 'श्रुतमुक्ति' तो शक्य नहीं है परंतु 'ऋण स्मृति' करता हूँ। आप सर्वो के तरफ से मुझे सतत आशीर्वाद मिलते रहे

ऐसी मैं पात्रता प्राप्त कर सकूँ यही ईश्वर को तथा आपको नम्र प्रार्थना....

प.पू. गुरुभगवंत,

तथा सर्व पूज्य महात्माओं को वंदन !

देव-गुरु की कृपा से शाता में होंगे।

विहार सुखपूर्वक चल रहा होगा?

वांकानेर से भाई के द्वारा आपश्री के समाचार मिले, बहुत-बहुत आनंद हुआ..... आपश्री को ता. 5 जन. को मिलने के बाद ता 12,13,14 जन. पालिताणा श्री शत्रुंजय श्री आदिनाथ दादा की स्पर्शना की।

बहुत वर्षो के बाद.....

थोडी बहुत सच्ची समझ आने के बाद तो प्रथम बार स्कूल में पाँचवीं में प्रवास में गये थे, तब अंत में दादा के गिरिराज ऊपर दर्शन किये थे।

बहुत-बहुत आत्मीय, अलौकिक शब्दातीत आनंद आया अनुभव हुआ।

आपश्री ने कहा कि श्रुतदेवी मंदिर में श्री गौतमस्वामी का फोटो रखना। नियमित वंदन दर्शन करना।

पालीताणा जाते वक्त मन में निश्चित किया था कि वहाँ से श्री गौतमस्वामी का फोटो लाऊँगा। बस, इतनी मात्र इच्छा थी।

वहाँ तो एक साध्वीजी भगवंत के द्वारा मुझे श्री गौतमस्वामी की छोटी प्रतिमा देने में आई। तब मन-हृदय-आत्मा में हुआ

''प्रभु तेरी करुणा का कोई पार नहीं है। सिर्फ मन में इच्छा करने से इच्छापूर्ति हो गई।''

सचमुच, ईश्वर और आप सर्व पूज्यों की तरफ से मुझे, मेरी पात्रता-लायाकात-योग्यता से अनंतानंत गुणा कृपा मिल रहा है।

अविरत आशीर्वाद, कृपादृष्टि, वात्सल्य, मार्गदर्शन, प्रेरणा मिलती ही रहती है।

मैं, सतत

असंख्य दोष-अवगुण, अपराध-गुनाहों से गंदा बना हुआ हूँ। फिर भी, वर्तमान की परिस्थिति तो किसी भवों में पुण्योदय और परमकृपालु परमात्मा तथा

आप सर्व गुरूभगवंतों की कृपादृष्टि से ही शक्य बनी है।

पालिताण से वापस आते 'अयोध्यापुरम्' गये। वहाँ 3000 वर्ष पुराने श्री प्रगट प्रभावी पार्श्वनाथ दादा तथा विश्व की सबसे बड़ी प्रतिमा श्री आदिनाथ दादा के दर्शन किये।

इस जीवन में सबसे पहले श्री प्रभु के चरणों की स्पर्शना और पूजा की।

अवर्णनीय आनंद आया।

यह सब अद्वितिय लाभ आप सर्व पूज्यों के आशीर्वाद से ही शक्य बना है।

आपके सान्निध्य में पसार हुए थोडे क्षण, मिनिट या घंटे मेरे जीवन का संस्मरण बनकर रहेंगे।

बहुत समय से आपको मिलने की, वंदन करने की भावना.... वह ईश्वर ने पूर्ण की।

और आपश्री की अविरत बहती कृपादृष्टि, वात्सल्य, आशीर्वाद, मार्गदर्शन, प्रेरणा रूपी धारा में मैं भीग गया।

कोई भी स्थूल या भौतिक पहचान के बिना सिर्फ प्रथम बार की ही मुलाकात में आपश्री की तरफ से मिले स्नेह, वात्सल्य, प्रेरणा, मार्गदर्शन को देखकर मेरे आत्मा-हृदय-मन में सतत् एक ही सुर उठता है 'तू सचमुच यह प्राप्त करने के लायक है?'

बस, मैं आपकी कृपादृष्टि को प्राप्त करने के लिये लायक बनूं ऐसी मुझ में योग्यता आये ऐसा कुछ आप करो। बालक जिस तरह माता का हाथ पकड़ कर सतत ट्राफिक वाले मार्ग पर भी निश्चिंत,बेफिकर हो जाता है, वैसे हम भी इस संसार के अतिदुर्गम मार्ग - लोभ, मोह, द्वेष, वासना, तिरस्कार वगैरह दोष-अवगुण, पापों के ट्राफिक मार्ग पर, आपश्री पूज्य गुरूभगवंतों का हाथ पकड़कर, बालक की भाँति बेफिकर हो गये है।

अब,

बालक की सुरक्षा की, जीवन की संपूर्ण जवाबदारी माता पर है।

वैसे,

हमारे जीवन की, जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचने की संपूर्ण जवाबदारी आप सर्व गुरूभगवंतों की है।

यदि उस बालक के लिये माता के प्रति उत्कृष्ट समर्पणभाव होता है, वैसे हमारा भी आप सभी गुरूभगवंतों के प्रति अनंतोनंत समर्पणता जरूरी है।

यदि हमारें अंदर थोडा-बहुत भी, निःस्वार्थभाव आ जाये आप सभी गुरूभगवंतों के प्रति तो, हम भी आपके संग जीवन के विकट पथ पर निर्विघ्न होकर जिंदगी के अंतिम लक्ष्य..... संसार में जन्म-मृत्यु के चक्कर में से मुक्ति पाकर मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे।

पूज्यश्री, यह अमूल्य मानव भव मिला है.....।

पुनः मिलेगा या नहीं, यह प्रश्न है....।

आपश्री सतत ऐसी आराधना बताएं कि जिससे, हम संसार से अलिप्त रहकर मोक्ष मार्ग पर सतत आगे बढते रहे।

बस, मन में एक ही भावना है कि आप सभी पूज्य गुरूभगवंतों का पकड़ा हुआ हाथ कभी छोडना नहीं है, कभी भूल हो जाये तो हमें माफ करना।

अनुकूलता के अनुसार प्रत्युत्तर, आशीर्वाद, प्रेरणा भेजना। हृदय के भावों के प्रवाह में शब्दों की संख्या की मर्यादा का ख्याल ही नहीं रहता.... बस ... ऐसा ही होता है कि मेरे मन के सर्व भाव आपको सतत लिखता रहूँ और आपके आशीर्वाद प्राप्त करता रहूँ। आपके रश्मिन के शत् शत् वंदन।

''जिनशासन की रक्षा के लिये कुरबानी है मेरी....''

''हमको ऐसा लग रहा है कि अब श्राविका बहनों को जैनधर्म का गहरा अभ्यास करना ही चाहिए। तुम सभी लौकिक शिक्षण के लिए कितनी मेहनत करते हो, तो लोकोत्तर शिक्षण में क्यूं आगे नहीं आते? आप तैयार होंगे, तो आपको फायदा मिलेगा ही, उसके उपरांत साध्वीजी भगवंतों को पढ़ाने का लाभ भी मिलेगा। इस काल में आपके हाथ से बहुत बड़ी जिनशासन की सेवा होगी।''

मैंने व्याख्यान में घोषणा की।

आज से पाँच वर्ष पहले की बात !

गांधीनगर में मेरा चातुर्मास.....

छोटा पर बहुत भाविक संघ...

मेरी भावना अंदर से ऐसी थी कि किसी भी प्रकार से अपने आठ-दस हजार

साध्वीजी भगवंत स्वाध्याय क्षेत्र में आगे बढ़ें। क्योंकि इस तरह ही जिनवचन को समझ सकेंगे, और संयम+स्वभाव को सुधारकर साधना कर सकेंगे।

इस भावना के आवेश में मैंने घोषणा की।

मैंने यह भी कहा कि 'जिसको अभ्यास करना हो, उन्हें यहाँ विराजमान साध्वीजी भगवंत पूरा अभ्यास करायेंगे। तथा इस अपूर्वकोटि के श्रुतज्ञान को पढने वालो का हमकों बहुमान भी करना है। मुंबई के एक श्रावक ने इसका पूरा लाभ लिया हो । जो इस ऊंची कोटि के अभ्यास में जुड़ेंगे, उनको हर महिने स्कोलरशिप के रूप में रु. 10,000 देने में आयेंगे।'' (अपनी भाषा में वह श्रुत बहुमान) व्याख्यान के बाद एक श्रावक मुझे वंदन करने आये। मुखाकृति से ही शांत-गंभीर-दीर्घदृष्टा-चिंतक-विनयी लगे.... (और वे सभी अनुभव मुझे पीछे से हुए ही।)

''म.सा. ! मेरी तीन लड़कियाँ है, मैं सचिवालय में काम करता हूँ। बड़ी दो लड़कियाँ ग्रेज्युऐट हो गई है। कॉलेज में दोनों अब लेक्चर देने जाती है, छोटी लड़की का अभ्यास चालू है, मुझे एक भी लड़का नहीं है.... आज आपकी बातें सुनकर मुझे ऐसा लग रहा है कि मुझे मेरी लड़कीओं को इस मार्ग पर लाना चाहिये।

वे दीक्षा ले, ऐसी शक्यता तो मुझे नहीं लगती, पर अभ्यास करने में उनको रस है। इसलिए आपकी यह योजना उनको अच्छी लगेगी। मैं आज उनसे बात करता हूँ।''

'' वे मानेगी ? यह तो नये जमाने का कल्चर है।''

''नहीं, साहेब ! मुझे मेरी लड़कीओं पर दृढ विश्वास है, भले वे नये जमाने में जी रही है, पर मेरी बात मानती ही है। फिर भी दो-तीन दिन के बाद आपको बतलाता हूँ।''

वे भाई आये और सचमुच दो-तीन दिन में दोनों लड़कीओं को लेकर आये।

''म.सा. ! यह दोनों तैयार है, अब आप कहो, कब से अभ्यास चालु करना है।''

''शुभस्य शीघ्रम.....'' अच्छे कार्य में राह किसकी देखनी? तुम चालु करो। साध्वीजी भगवंत को पूछ लो..... वे जब से कहे तब से ही चालु।''

''पर म.सा. ! थोडा स्पष्टीकरण करना है।''

''बोलो.....''

''यह दोनों लड़कियां धर्मक्रिया में बहुत पीछे है। यह दोनों पूजा भी नहीं करती। दूसरा इनको दो प्रतिक्रमण तो ठीक..... पर चैत्यवंदन सूत्र भी नहीं आता। उनमें मानवता के गुण है, स्वभाव से शांत है, पर धार्मिकता बिलकुल नहीं है। सामायिक-प्रतिक्रमण-चौविहार वगैरह कुछ नहीं करती।

म.सा. ! साध्वीजी के पास पढ़ते-पढ़ते यह सब उनमें आये तो अच्छा ही है।

पर नहीं आये तो? और बार-बार टोकते है तो इनको अच्छा नहीं लगता।

आप कहो, यह सब चलेगा?

इनके पास भूमिका का अभ्यास भी नहीं है, तो जीवविचारादि के अर्थ करने में कोई दिक्कत नहीं है ना?'' वे भाई बोले। दोनों लड़कियों की हाजरी में ही बोले, लड़कीयों की तरफ से भी मानो ये ही प्रश्न पूछने में आ रहे थे।

''तुम यह सब चिंता छोड़ दो। अजैन पंडितों को नवकार भी नहीं आता। फिर भी उनके पास संयमी पढते है या नहीं ? वैसे आपकी लड़कियां जीव-विचारादि भले पढ़े, उनको दूसरा सब आये तो अच्छा ! नहीं आये तो घबराने की जरूरत नहीं है। तुम अभ्यास चालु कराओं। मैं साध्वीजी भगवंत को आग्रह करुंगा कि वे इन दोनों को सामान्य से उपदेश भले दे.... पर बार-बार टोके नहीं।''

मुझे विश्वास था कि साध्वीजीओं का परिचय + अपना महिमावंत श्रुतज्ञान इतना सामर्थ्यवान् है कि 99 प्रतिशत तो उसके कारण ही जीवन में परिवर्तन आता है, इसलिये यह निर्णय लेने में कोई तकलीफ नहीं आयी।

और सूत्र याद करना वगैरह अलग प्रकार का श्रुत है। और जीवविचारादि में जीवादि तत्वों को बराबर जानना, वह अलग प्रकार का धर्म है।

''दूसरी बात'' वह भाई बोले ''मेरी लड़कीयां पढ़ेगी, पर स्कोलरशीप नहीं लेंगी।''

''क्यूं?'' मैनें आश्चर्य के साथ पूछा ''हमने महिने के रु. 10,000 की स्कोलरशिप की व्यवस्था इसलिए ही तो की है कि जिससे बहने, पढ़ने हेतु आकर्षित हो।''

''हमारा मन नहीं मान रहा हैं। लड़कीयां स्पष्ट ना कह रही है। आप यह निश्चित मानना कि इसके कारण पढाई धीमी गति से नहीं होगी। स्कोलरशिप मिले, तो यह दो जवाबदारी पूर्वक, और नहीं मिले तो जवाबदारी पूर्वक नहीं

पढेगी, ऐसा नहीं होगा।''

मुझे उनकी खुमारी, सात्विकता अच्छी लगी। वैसे देखे तो उनके पक्ष में तो यह बात गलत नहीं थी ना?

और साध्वीजी भवगंत के पास अभ्यास चालू हुआ। जीवविचार के अर्थों से प्रारंभ हुआ। बीच-बीच में साध्वीजी मुझे फरियाद करते कि ''म.सा. ! यह दोनों बहने सभी तरह से बराबर है। पर पूजा नहीं करती, आवश्यक सूत्र भी नहीं आते, तो यह कैसे चलेगा? आप कुछ विचार तो करो।''

मैंने उनको कहा, ''धीरज रखो, सब ठीक होगा। दोनों में दूसरे तो विशिष्ट गुण है ना? समय आयेगा, तब वह भी हो जायेगा। जल्दी मत करो।''

और आश्चर्य हुआ।

चातुर्मास पूर्ण हुआ। वहाँ तक तो चार प्रकरण + तीन भाष्य + पाँच कर्मग्रन्थ के अर्थ पूर्ण हो गये। पढ़ने के उत्साह के साथ दोनों बहनों ने मानों इतिहास की रचना की। इन चार मास दरम्यान उनके जीवन में भी परिवर्तन आने लगा।

1) आवश्यक सूत्र गोख (याद कर) लिये।

2) गुरुवंदनादि विधि सीख ली।

3) नवकारसी - चौविहार - तिविहार शुरू कर लिये।

4) गरम पानी पीना चालू किया।

5) पर्युषण के आठ दिन विशिष्ट प्रकार की अट्ठाई की।

विशिष्ट इसलिए कि वैसे तो एकासणा रोज करते, पर रोज उसमें एक ही द्रव्य वापरना, एक दिन सिर्फ पोहे, एक दिन सिर्फ थेपला (चाय-छूंदा-दूध-मसाला) कुछ नहीं.... इस तरह सुंदर तरीके से अट्ठाई की। मेरी इच्छा थी कि वे दीक्षा के मार्ग पर आगे बढ़े, पर वह शक्य नहीं बना। ऐसे भावोल्लास उनके नहीं थे।

उनका घर उपाश्रय से साढे चार कि.मी. दूर ! उसमें कॉलेज में लेक्चर देने का कार्य तो चालू, घर में भी कार्यों की जवाबदारी थी.... यह सब होने पर भी उन्होंने किस तरह चार मास में इतना अभ्यास कर लिया, वह मेरी समझ से परे था।

पर वह नजर के सामने, सत्य होने से ना कहने का कोई प्रश्न ही नहीं था।

चातुर्मास के बाद तुरंत ही.....

वो भाई जिस सेक्टर में रहते थे, वहाँ के प्रमुख ने मुझे एक दिन वहाँ आने की विनंती की, हम दो साधु वहां गये। उस भाई की विनंती से दूसरे दिन उनके घर संघ के साथ, थाली डंके के साथ पगलिया करने जाने का भी निश्चित हुआ। एक दिन हम वहाँ रूके, प्रवचनादि हुए। रात को हम दो ही साधु उपाश्रय में थे। हमने प्रतिक्रमण चालू किया, और वो भाई आये। मैंने कहा कि ''थोड़ी देर लगेगी।''

वह स्वयं का कार्य करके वापस आएँ, तब हम दोनों साधु शांति से बैठे-बैठे बातें कर रहे थे (स्वाध्याय नहीं था, पर विकथा भी नहीं थी।)

''आ सकता हूँ?'' उन्होंने अदंर आने की इजाजत मांगी।

''आ सकते हो!'' मैंने इजाजत दी, और अंदर आकर वे हमारे पास बैठे। एक-दो मिनिट तो नीरव शांति में पसार हुई।

सभी मौन....

''म.सा.! कितनी अच्छी है यह जिंदगी!'' उनके शब्दों में अलौकिक भाव था।

''आप सभी कितनी शांति से जिंदगी जी रहे हो! हम जैसों का भव तो इस संसार में रखडपट्टी में ही पसार हो जायेगा। मैं कुछ साध नहीं सकूँगा, पूरे दिन नौकरी में, काम-काज में..... भले ओफिसवर्क है, इसलिए शारीरिक थकान भी नहीं लगती। पर उसमें मेरी आत्मा का क्या?''

''म.सा.! मैं जब आपके प्रतिक्रमण के समय आया और पुनः वापस गया, दोनों समय यहाँ के वातावरण को देखकर मन में दो निर्णय किये है। आपकी मंजूरी चाहिए और आशीर्वाद!

पहला निर्णय

1) मेरी उम्र 52 वर्ष की है, सरकार में 58 वर्ष की उम्र में निवृत्ति होती है। उसके बाद सरकार की तरफ से पेन्शन मिलेगा। यदि अभी ही मैं निवृत्त हो जाऊँ, तो पेन्शन तो मिलेगा, पर 58 के बाद मिलने वाले पेन्शन से कम.... फिर भी मैंने विचार किया है, उस 58 के बाद मिलने वाला अधिक पेन्शन के लिये मुझे मेरी जिंदगी के 6 वर्ष बिगाडने नहीं है। अब जो पेन्शन मिलेगा, उससे घर चल जायेगा।

2) इस संघ के प्रमुख के साथ नीति के विषय में मेरा विरोध है। वे कहते है कि संघ के सभ्यों को फरजियात 3000 रु. लिखाने ही चाहिए.... मैंनें कहा

3000 की ना नहीं है, पर वह फरजियात नहीं होना चाहिए। यह नीती बराबर नहीं कही जाती।'' (यह पूरी हकीकत क्या थी? यह लिखते वख्त याद नहीं है, पर प्रायः ऊपर बताया है ऐसा ही कुछ था।)

म.सा. ! एक वर्ष में 3000 देने में कोई तकलीफ नहीं है। पर मजबूरन देने ही पडे ऐसे उनकी निश्चित की हुई नीति बराबर नहीं लगती। इसलिए मैंने अभी तक एक भी रुपया इसमें भरा नहीं हैं। इसलिए वे मेरे साथ बात नहीं करते है।

पर मुझे लगता है कि 'इस नीति के साथ-साथ यह नीति भी इतनी ही नहीं, पर उससे भी अधिक उपयोगी है कि प्रत्येक जीवों के साथ क्षमापना कर लेनी चाहिए, मैत्री कर लेनी चाहिए।'

मैंने निर्णय किया है कि कल मेरे घर आपश्री चतुर्विध संघ के साथ पधारें, तब मैं जाहिर में प्रमुख श्री के पास क्षमा माँगूगा। लौकिक नीति गौण करके लोकोत्तर नीति को स्वीकार करना है।''

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। दोनों वस्तु अत्यन्त कठिन थी। उसका कारण यह कि उनके पास स्वयं का घर था, और बीस लाख की बाकी मूडी.... पर तीन लड़कियों की जवाबदारी.....उनके विवाहादि के खर्चे.... उसमें बिमारी आ जाये तो? इसलिए नौकरी छोड़ देने में बहुत भय था।

उसमें महंगाई बेशुमार - छोटी रकम में इन सभी को पालना सरल नहीं है ना? और क्षमा मांगने के निर्णय ने तो उनके अहंकार को चूर-चूर कर दिया।

तीन-तीन साल की कटुता को पिघला दिया था।

मैं बहुत खुश हुआ।

दूसरे दिन उनके घर पगलिये किये। ''**उवसमसारं खु सामण्णं**'' इस विषय पर प्रवचन दिया। उसके बाद उन्होंने जाहिर में एकदम निखालस मन से प्रमुख के साथ क्षमापना की। उनकी वह पवित्र भावधारा सचमुच वंदनीय थी।

हाँ!

बीच में एक बात बताना भूल गया।

पिछली रात उन्होंने एक बात कही थी कि ''म.सा! अब तक तो हमनें स्कोलरशिप ली नहीं, पर अब यदि मैं नौकरी छोड़ दूँ, तो लड़कियों को संकोच होगा। उनको ऐसा होगा कि पापा की आवक कम हो गई है, सिर्फ पेन्शन है।

म.सा ! उनका मन नहीं मानेगा..... यदि मुझे स्कोलरशिप नहीं ही लेनी हो, तो 58 वर्ष तक नौकरी ही करनी पड़ेगी। और यदि निवृत्त होना हो, तो ना-छुटके मुझे स्कोलरशीप लेनी ही पड़ेगी।

म.सा. ! शांति वाला जीवन चाहिए।

इसलिए आखिर विचार किया कि यदि स्कोलरशिप मिले, तो लड़किओं को शांति रहेगी। और मेरी निवृत्ति शक्य बनेगी।

लड़कियों के साथ मेरी बात हुई नहीं है, पर मुझे ऐसा लग रहा है।

तो म.सा. ! वह योजना अभी भी चालू ही है ना ?''

''अरे, चालु ही है। तुमको कोई चिंता नहीं करनी है। तुम स्कोलरशिप लोगे तो हमको ज्यादा आनंद और संतोष होगा।''

और इस तरह व्यवस्था हो गई।

1) संपूर्ण निवृत्ति.....सिर्फ पेन्शन + पुरानी मूडी पर निर्वाह....

2) दोनों बहने पढ़े, स्कोलरशिप लेने की बात मंजूर.... !

लगभग एकाद महिने के बाद, अहमदाबाद तपोवन में मैंने उनको बुलाया। मनीषभाई पंडितीजी तब मुंबई से आई स्कोलरशिप की रकम लेकर आये थे। मेरे सामने मनीषभाई ने रु. 20 हजार श्रावक को दिये। उन्होंने लिये। और उसके बाद औपचारिक बातचीत के बाद वे निकल गये। लगभग दुपहर को 4 बजे वे पुनः मनीषभाई को मेरे पास लेकर आये। और रु. 20,000 मनीषभाई को पुनः दिये।

मैं और मनीषभाई दोनों चौंके, '' क्यूं? वापस क्यूं?''

''म.सा. ! क्षमा करना पर मैं नहीं ले सकूँगा।''

''पर तुमने ही तो मुझे हाँ कहा था ना?''

''हाँ ! पर लड़कियों को पूछे बिना ! मुझे ऐसा लगा था कि मेरी निवृत्ति के द्वारा अल्प आवक लड़कियों को मंजूर नहीं होगी। इसलिए आवक पूरी करने के लिये मैंने इस स्कोलरशिप की सामने से ही माँग की थी।''

''पर आज स्कोलरशीप लेने के बाद, लड़कियों को मैंने सब बात कही, तो उन्होंने तो मुझे बहुत डांटा। मुझे कहा कि ''पापा ! आपको होश है? एक तरफ हम श्रुतज्ञान ले रहे है, दूसरी तरफ उसके ही पैसे ले रहे है? किसी भी हिसाब से नहीं। हाँ ! हम दोनों पढाई कर लेते है, उसके बाद साध्वीजी को पढ़ाए, और तब यदि

जरूरत पड़ेगी तो विचार करेंगे। बाकी अभी ऐसी क्या मजबूरी है कि हम ज्ञान के पैसे लें?''

''म.सा. ! मैंने उनको समझाया कि मेरी आवक घटी है,

खर्चे घटाने पड़ेगे। तुम्हारी कोई मौज-शौक की इच्छा होगी, तो भी तुम वह पूरी नहीं कर सकोंगे।

पर उनका जवाब एकदम साफ ! हमको ऐसे पैसों से कोई मौज शौक करनी नहीं है। दूसरी बात यह कि हमकों सीधी-सादी जिदंगी अच्छी लगती है। मौज-शौक की हमकों अपेक्षा नहीं है। आप पैसे वापस दे दो, वरना हम पढ़ना छोड़ देंगे।

म.सा. ! वे अभ्यास बंद कर दे, उससे अच्छा तो यह पैसे वापस दे दूँ वहीं अच्छा?''

वे भाई बोले।

मुझे ऐसे तो आनंद हुआ कि बाप से भी बढकर लड़कियाँ निकली। पर मुझे व्यवहार के अनुसार अच्छा नही लगा। आदर्श अलग वस्तु है, और प्रेक्टिकल अलग वस्तु है ना? आने वाले दिनों में पैसे की तो कदम-कदम पर जरूरत पड़ने वाली है। लड़कियां बड़ी हो चुकी है, शादी का खर्च आने वाला ही है। इकट्ठी हुई रकम काम में आयेगी। इसलिए मैंने उस भाई को कहा।

''तुम एक काम करो, लड़कियों को मेरे पास ले आओ, मैं उनको समझा दूँगा।'' मैंने कहा, मुझे मेरे शुद्धाशय पर विश्वास था।

''लड़कियाँ हाँ कहेगी, तो मुझे क्या दिक्कत है? मैं उनको आपके पास लेकर आता हूँ।''

और दूसरे दिन वह पवित्र परिवार मेरे दर्शन के लिए आया। मैंने उनको समझाया।

1) अचानक बिमारी का खर्च आयेगा तो?

2) शादी का खर्च आयेगा तो?

3) मंहगाई का क्या?

4) कम आवक का क्या?

5) मौज-शौक की इच्छाओं का क्या? वगैरह....

पर दोनों बहने मक्कम रही।

''हमको अभी कोई भी तकलीफ नहीं है। जब ऐसी कोई तकलीफ पड़ेगी, तब आप को जानकारी देंगे।'' यह एक ही बात उन्होंने पकड़ कर रखी।

''देखो, मेरे पास अभी यह दाता है, तुम जब भी तकलीफ में मेरे पास मांगने आओगे, तब मेरे पास दाता होंगे या नहीं? उससे अच्छा तुम यह ले लो, काम में आयेगा।''

''म.सा. ! आपके पास उस समय कोई भी दाता नहीं होंगे, उसका मतलब यही कि तब हमारा पुण्य कम ही होगा, तो अभी ली हुई यह रकम भी कहीं भी खर्च हो जायेगी, और हम हैरान होंगे। इसलिए रकम नहीं लेंगे? हम जैसे-तैसे घर चला लेंगे?''

दोनों बहनों ने खुद के कर्मग्रन्थ के अभ्यास का मेरे ऊपर ही प्रयोग किया।

अंत में.....

मैं हारा और विजय प्राप्त करके परिवार ने विदा ली। परंतु इनकी श्रद्धा + शासन निष्ठा + उदारता + निःस्पृहतादि गुणों को देखकर मैं रोमांचित हो गया। ऐसे व्यक्ति भी इस काल में जी रहे है? वाह रे वाह !

ये तो न्यू जनरेशन ! गांधीनगर जैसे शहर में पली हुई, कॉलेज के वातावरण में रही हुई, कॉलेज में लेक्चर देने वाली दो लड़कियां थी, उनमें ऐसी गुणवत्ता किस तरह से संभावित हो सकती है?

इनका अभ्यास आगे बढ़ा।

दूसरी ओर इन्होंने कॉलेज में लेक्चर देना छोड़ दिया, उसका समय बचा करके अभ्यास बढ़ाया। ऐसे तो लेक्चर देने से मिलने वाले पैसे की आवक कम हो गई, परंतु यह सब उन्होंने गौण कर दिया।

तीसरी ओर गांधीगनर में साध्वीजीओं का आना-जाना रहता है, परंतु रुकना कम..... इसलिए अभ्यास कैसे करवायेंगे? यह भी बड़ा प्रश्न ! गांधीगनर से अहमदाबाद साबरमती पढाई के लिए जाना हो, तो 15 कि.मी. होता है।

मैं दुविधा में..... आगे का अभ्यास कैसे करवायें? सच पूछो तो मैंने अपेक्षा छोड़ दी मैंने हार स्वीकार ली, कि ''साध्वीजीओं को पढा सके, वैसे खानदान बहनों को तैयार करने में निष्फल हो जाऊँगा।''

पर उस भाई और उन दो बहनों ने हिम्मत हारे बिना मेहनत चालु ही रखी। गांधीनगर से अमियापुर तपोवन में 15 कि.मी आकर दूसरे साध्वीजी के पास संस्कृत पुस्तकादि का अभ्यास चालू किया। उनके पापा उनको बहुत सहायक बनते थे। अब वे निवृत्त हो चुके थे। इसलिए पर्याप्त टाइम देने में वे सक्षम थे। घर में मारूति गाड़ी थी। अवसर आने पर उसका भी उपयोग करते। बहनें तीन-चार घंटे साध्वीजी के पास पढती, तब यह भाई गाड़ी में बैठकर पुस्तक पढ़ते, या तो महात्माओं के साथ सत्संग करते। समय पर लड़किओं को घर ले जाते।

इस तरह बुक पूरी हुई, संस्कृत के काव्य पूरे हुए। चातुर्मास आया, पर अब तपोवन की साध्वीजी का चातुर्मास आंबावाडी निश्चित हुआ, तो कहा पढ़ना ? यह बड़ा प्रश्न पुनः खड़ा हुआ। पुनः तलाश करने पर एक साध्वीजी ने हा तो कहीं परंतु उनका चातुर्मास जैनगर ! गांधीनगर से 30 कि.मी.।

अब क्या ?

हर दो दिन के बाद गांधीगनर से जैन नगर लड़कियों को गाड़ी में ले जाना, वे वहाँ पढ़े, शाम को पुनः घर आये..... 60 कि.मी. सिर्फ न्याय के अभ्यास के लिये। इस भाई ने यह मुसाफरी भी प्रारंभ की।

पेट्रोल का खर्चा, सुबह नौ से शाम 5 बजे तक....या तो खुद गाड़ी में बैठकर वांचन करते या तो साधु के पास बैठते..... और शाम को वापस घर ले जाना। मुझे यह सब समाचार मिले, थोड़े-थोड़े दिनों में भाई मिलने आते, सभी सामाचार दे देते। यह सब जब सुनता, तब आँख में से हर्ष के आँसु गिरते। मैंने उस भाई को बहुत बार पूछा, ''थकते नहीं हो? ऊबते नहीं हो? इसमें तुमको क्या मिलेगा?''

उनका निखालस स्मित और मंदस्वर से मीठा जवाब 'शासन का कार्य है ना? और आपने साध्वीजी भगवंतों को स्वाध्यायी बनाने का महायज्ञ शुरु किया है ना? हम आपको हारने नहीं देंगे। और हमें हमारी शक्ति के अनुसार यह एक छोटी सेवा करनी है। इसके लिये मेरी शक्ति के अनुसार जितना भोग दे सकूँगा उतना तो देना ही है।'

यह तो मेरे कानों के लिए अमृत भोजन था।

और सचमुच उस चातुर्मास में जबरदस्त मेहनत के साथ तर्कसंग्रह और मुक्तावली का अभ्यास संपूर्ण कराने में आया।

इन सब अभ्यास के दौरान दोनों लड़कियां जब घर में पुनरावर्तन करती तब यह भाई (इनके पापा) भी साथ में बैठते पदार्थों की चर्चा करते, स्वयं के अनुभव के अनुसार बराबर पदार्थ भी खोलते थे। इस तरह परस्पर मेहनत से यह आधार (साधन) तो तैयार हुआ।

अब पढ़ने थे साध्यग्रंथ!

जैसे-जैसे अनुकूलता मिलती रही, वैसे-वैसे धर्मबिन्दु - अष्टक प्रकरण - षोडशक प्रकरण - प्रवचन सारोद्धार वगैरह सुंदर, प्रियतम, श्रेष्ठतम ग्रन्थों का अभ्यास भी कर लिया।

पर परिस्थिति ने अचानक मोड लिया।

एक महाविघ्न (!) आकर खडा हो गया।

''दोनों बहनों में से बड़ी लड़की की शादी निश्चित हुई है।'' ऐसे उस लड़की के पिताजी ने समाचार दिये। (पुराने प्रेम में बंधी हुई, ब्राह्मण जाति के लड़के के साथ शादी करने की इच्छा थी.... मुझे विचार आया, अब क्या होगा.... लड़की..... सभी तरह से तैयार, सक्षम, भोजन थाली में आया.... खाने का अवसर हाथ में था पर....) पूरी विगत सविशेष कही। मैंने जानी।

वह भाई गये, थोड़े महिनों के बाद दोनों की शादी निश्चित हुई। पर कैसा - कैसा आश्चर्य हुआ। वह सुनो।

1) रिसेप्शन हुआ था, पर रात को नहीं, दिन में ही।

2) घास के ऊपर नहीं हॉल में।

3) सभी को बैठकर भोजन करवाया।

4) बाजोठ + कांसे की थाली - कटोरी में खिलाया।

5) ब्राह्मण परिवार में, उनकी शादी के लिए आये सभी ने उत्साह से सभी बातों को स्वीकार किया।

6) उस लड़की ने उस दिन चौविहार किया और ब्राह्मण युवान ने भी चौविहार किया।

7) दावत में एक भी अभक्ष्य आइटम नहीं। खाने में नहीं, पीने में भी नहीं।

यह सब जब मैंने सुना, तब मुझे आश्चर्य हुआ। जैन परिवार की 1 हजार शादीयों में एकाध शादी भी शायद ऐसी होती होगी। उसके सामने जमाई पक्ष अजैन

होते हुए भी वे आचार-चुस्तता के लिये सहर्ष तैयार हो गये, वह उनकी जबरदस्त महानता कही जाएगी।

अब देखो.....

हमारी भावना, हमारी मेहतन सफल होने लगी। लग्न होने के बाद भी इस बहन ने स्वयं का अभ्यास चालू रखा। सोलारोड़ संघ में आये हुए सागर समुदाय के उत्तम संयमधर साध्वीजीओं को संस्कृत + न्याय पढाना चालू किया। साध्वीजी म.सा. उनसे बहुत प्रभावित हुए।

साध्वीजीओं ने कहा ''हमको एक घंटा पढाने का महिने का पगार कितना?''

जवाब : एक रुपया भी नहीं।

साध्वीजी : क्यूं? पैसे तो लेने ही पड़ेंगे। हम सोने की चैन से बहुमान करायेंगे।

जवाब : मैं पढ़ाने नहीं आऊँगी, यह पक्का है।

साध्वीजी : पर तुम भी 2.5 कि.मी. से आती हो, आने-जाने का गाड़ी-भाड़ा तो लगता है ना? तुम रिक्शे से आती हो, उसका खर्च कितना?

जवाब : महिने का लगभग बारहसौ।

साध्वीजी : बारहसौ ! तो वह तो लो। भले तुम पढाने के पैसे ना लो। पर तुम्हारे घर का जितना खर्चा है, वह तो लो।

जवाब : नहीं, यह नहीं होगा।

साध्वीजी : तुम्हारे पति क्या करते है? कितना कमाते है?

जवाब : नौकरी ! महिने के 20,000 कमाते है।

साध्वीजी : तो तुम्हारा 1200 रु. का खर्च इसमें से ही होता होगा? ऐसा तो नहीं चलेगा। इतनी छोटी आवक में से 5 प्रतिशत आवक का तो इस तरह से ही व्यय हो जाता है, तो बचत क्या रहती है?

जवाब : बस, आप ज्ञान प्राप्ति करो, उसमें मुझे संतोष मिलेगा, वहीं मेरी बचत !

साध्वीजी सोच में पड़ गये ! उनको आश्चर्य के साथ आनंद भी हुआ।

यह समाचार जब मुझे मिले, तब मुझे पुनः चिंता हुई। इस बहन को तो अभी पैसे लेने ही चाहिए, क्योंकि पढ़ाते है, तो क्यूं नहीं लेती ? और उनके पति को 1200 रु. का खर्च अच्छा लगता है या नही? यह किस तरह पता चलेगा। यह बहन गलत जिद तो नहीं करती है ना?

योगानुयोग से उनके पति को मिलना हुआ, मैंने पूछा और कहा कि ''आपको कम से कम रिक्शा के भाड़े के पैसे तो लेने ही चाहिए। आप लाखों में कमाने वाले नहीं हो। और यह तो कायमी खर्चा है।''

पर वह अजैन (!) ब्राह्मण युवान बोला, ''ना, म.सा. ! 1200 के 20000 हो तो भी चलेगा। मुझे उसकी कोई चिंता नहीं है।''

पूरी दृढता के साथ बोल रहे उस युवान को मैं देखता ही रह गया। ये सभी किस मिट्टी के बने हुए है, यह मैं परख नहीं सका।

अब उसने खुद का वाहन ले लिया है, इसलिए पेट्रोल का 800 रु. का खर्च होता है। (हर महिने।)

खुद के परिवार के चार व्यक्तियों का तीन टाईम भोजन बनाने से लेकर सभी कार्यों को संभालकर भी साध्वीजी म.सा. को पढाने के लिए समय निकालने वाले, दौड़-भाग करने वाली बदले में एक भी रु. नहीं लेने वाली यह कोई अलग ही श्राविका बहन है। उनको कितने धन्यवाद दें ?

उनकी छोटी बहन !

शादी नहीं की है और इच्छा भी नहीं हैं?

कारण? क्या दीक्षा की भावना है?

नहीं, नहीं ! भावना नहीं हो रही।

परंतु उसकी एक ही भावना बस - मम्मी-पापा की बुढापे में सेवा कौन करेगा ?

लड़का तो नहीं है इसलिए मुझे शादी नहीं करनी।

उनके पापा ने उनको समझाया कि हमारे बुढापे की चिंता छोड, पर हमारे मृत्यु के बाद तेरे अकेले जीवन की चिंता कर?

पर वह सुनती नहीं है, मानती नहीं हैं?

इस समय उसने गांधीनगर से साबरमती एक दिन छोड़ के एक दिन आकर

साध्वीजी भगवंतो को न्याय + संस्कृत बुक वगैरह का अभ्यास कराया। आश्चर्य तो यह हुआ कि न्याय पढ़ने वाले साध्वीजी ने कहा कि ''हमने इसका अभ्यास बहुत अच्छे पंडितजी के पास किया हुआ है, पर हमको तो इस बहन के पास पढने में बहुत आनंद आता है।''

और 2070-71 के चातुर्मास में यह बहन एकांतर (एक दिन छोड़ के एक दिन) गिरधरगनर 20-25 कि.मी. आना-जाना करके पढ़ाने हेतु जायेगी। घर में उसकी मम्मी को वर्षीतप है इसलिए उनकी सहायता करनी जरूरी! इसलिए प्रतिदिन जाना नहीं जमेगा, साध्वीजी के पास रुकना भी नहीं जमेगा (वर्षीतप में मम्मी को बियासणे के दिन सहायक बनने के लिए)।

मैंने कहा 'अहमदाबाद में ही रहने की व्यवस्था हो जाये तो?'

पर अभी तीसरी लड़की की गांधीनगर में कॉलेज चालू है, इसलिए अभी तो गांधीनगर छोड़ना भी अशक्य बनेगा।

हाँ! इस वर्ष में गांधीगनर में पू. श्रुतवर्धनाश्रीजी (पू. नीतिसूरिजी समुदाय) आदि दस साध्वीजीओं का चातुर्मास है। उनको पढाने के लिए पूरा भोग देंगी। सुरत के श्रेष्ठ पंडितवर्य जगदीशभाई के अवसान के बाद उनकी परमपद संस्था में अभ्यास करने वाले 35-40 जितनी बहनों में से पाँच बहने गांधीगनर में आ चुके है और उन सभी को अमुक विषय पढ़ाने का कार्य यह बहन करेगी। और उसके पापा उसकी व्यवस्था करने में सहयोग करेंगे।

दूसरी ओर बड़ी बहन ने इस चातुर्मास में सोला रोड से वावपंथक की वाडी (लगभग सात कि.मी.) एक दिन छोड़ के एक दिन पढाना चालू किया। प्रतिदिन तीन घंटे! (विषय भी सामान्य नहीं, अत्यन्त कठिन! न्याय का!)

कई साध्वीजी भगवंतो ने कहा कि 'हमको दीक्षा के बाद पढ़ने के विषय में बहुत तकलीफ पड़ी है....'। यह सब वर्णन सुनकर बहुत कम रोने वाली इस बहन की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने दृढ संकल्प किया कि ''मैं पहले साध्वीजीओ को पढाऊँगी, उसके बाद श्राविका वगैरह को।''

उनके पास अब श्राविका बहनों को पढाने का ऑफर भी आता है। पर साध्वीजी की पढ़ाई गौण करके वे कुछ भी करने के लिये तैयार नहीं है।

पुनः ध्यान में लें.....

* घर में चार + एक (खुद) - पांच व्यक्तियों की तीनों टाइम की रसोई की जवाबदारी उनके सिर पर है, सासु नहीं होने से कोई सहायक भी नहीं है।
* मध्यम परिवार है, 20,000 की आवक है, परिवार ब्राह्मण है..... फिर भी एक भी रु. अब तक लिया नहीं है?
* कॉलेज में पढ़ी हुई, कॉलेज में लेक्चरर के रूप में रह चुकी 25-27 वर्ष की उम्रमें न्यू जनरेशन की यह बहन है, और उसकी दुनियां में संसार के बदले संयम की ऐसी उच्चकोटि की महिमा ने स्थान लिया है।
* उनके पति धीरे-धीरे धार्मिक हो रहे है। शंखेश्वर पार्श्वनाथ दादा की पूजा भक्ति समूह में वे करके आये। बड़ी बहन पाँचतिथी तो चौविहार करती है, उसके सिवाय भी अधिकतर चौविहार करती है, तो उनके पति भी उनके साथ चौविहार करते है।

इन सबके पीछे दोनों बहनों के पिता का बहुत जबरदस्त पुरुषार्थ !

भोगप्रचुर दुनियां में रहकर भी योगसाधना के लिए यह कैसा सघन पुरुषार्थ ! शादी नहीं करने वाली बहन ! अंतिम तीन वर्ष से अधिकतर बियासणा का पच्चक्खाण ! (ज्यादा करें, पर कम तो नहीं) परिधान का कोई शौक नहीं, आभूषणों का कोई गौरव नहीं, घूमने-फिरने का कोई शौक नहीं - उसकी दीक्षा की भावना क्युं नहीं हो रही है ? यही आश्चर्य है। हालाँकि उसके पापा कहते है कि 'हम दोनों को संभालने के लिए दीक्षा नहीं ले रही।' मुझे हालाँकि यह उचित नहीं लगा, पर हाल तो यह दीक्षा नहीं ही लेगी यह पक्का है।

यह पूरी वर्तमान परिस्थिति बताई।

इस सभी के मूल में वह भाई (दोनों बहनों के पिता)..... जिनका नाम हमारें पू. गुरूदेवजी के संसारी नाम से ही है..... उनकी गुणवत्ता अनुमोदनीय है। हालाँकि बीच में एक खुलासा कर लूँ, वह मुझसे धर्म को पाएँ है, मेरे कारण आगे बढ़े है। ऐसा मत मानना। स्वामी विवेकानंद के पुस्तकों के वाचंन से संस्कृति प्रेमी बने, पू. हितरुचि म.सा. के परिचय के बाद वे जैनधर्म को अच्छी तरह से जानने वाले बने। ऐसे बहुतों ने उनको तैयार किया है। मेरा परिचय तो अंत में हुआ, और वह भी उनकी लड़कियों को पढ़ाने की प्रेरणा और मार्गदर्शन जितना ही..... ज्यादा नहीं। इसलिए ''इस श्रावक को मैंने तैयार किया है, ऐसी भ्रम से भी भूल मत करना। हाँ ! मेरे भक्त गिन सकते हो।''

चलो, अब उनकी विशिष्टता देखते है।

1) सरकार में जिस पोस्ट पर थे, उस पोस्ट पर आये हुए सभी ने करोड़ो रुपये कमा लिये है। क्योंकि वहाँ भ्रष्टाचार सहज है। पर नरेन्द्र मोदी से सातवीं पोस्ट पर रहे हुए इस भाई ने स्वयं की नौकरी के दरम्यान एक रु. भी खाया नहीं, भ्रष्टाचार नहीं किया।

स्वजन, परिचित काम निकालने आये, तो यदि कायदे से विरुद्ध हो, तो वह कार्य करके दिया नहीं। यदि कायदेसर हो, पर सिर्फ सरकार की लंबी विधि के कारण से अटक रहा हो, तो वह कार्य जल्दी पूरा करके देते।

इस तरह बहुत सारे कार्य इन्होंने करके दिये है। अब जब खुश बने लोग उनको कुछ देने जाये (वह रकम हजारों में या लाखों में हों) तो स्पष्ट भाषा में कह देते, 'यदि दूसरी बार मुझे लालच दी तो भविष्य में आपका एक भी कार्य नहीं करूँगा।'

वे मिठाई का बॉक्स देते है, ''यह तो स्वीकारो - घर में परिवार वालों को खिलाना।'' पर वह बॉक्स घर पर ही लेकर नहीं जाते थे। उनकी बहुत ही विनंती हो तो एक टुकड़ा ले लेते। वहाँ पर ही खाकर भरा हुआ बॉक्स वापस लौटा देते।

2) एक व्यक्ति खुद का कार्य निकालने के लिए उनके पास आया, 'पैसे दो, तो ही काम होता है' ऐसी स्पष्ट मान्यता वाला वह व्यक्ति इस भाई को कार्य सौंपने के बाद बोला ''आपका स्कूटर कहा हैं? नंबर कौनसा है? उसकी डीकी में मैं भेंट रखके जाता हूँ।'' भ्रष्टाचार करते पकड़ ना लें, इसलिए अधिकारी सीधे-सीधे रकम हाथ में नहीं लेते। इस तरह से लेते है....? ऐसा वह भाई जानता था। उसे लगा कि यह भाई भी सीधा नहीं, पर टेढी रीत से भ्रष्टाचार करता ही होगा।)

गुस्सा होकर इस भाई ने कह दिया, ''मिस्टर! आप होश में तो हो ना! डीकी में तुम 10 लाख रखोगे ना तो भी काम नहीं होगा। काम करने के लिए सरकार मुझे अच्छा पगार देती है। इसलिए यह गंदगी मेरे घर डालने की जरूरत नहीं है।'' और उसको रवाना कर दिया।

3) उनके मित्रों ने बहुत बार सलाह दी कि 'तुम सामने से पैसे मत मांगो, वह ठीक! पर कोई सामने से ही पैसे देने आये, विदेश घुमने की टिकिट दे जाये - तो आपको ना नहीं कहना। हम थोडी ना भ्रष्टाचार कर रहे है? वे स्वयं ही इच्छा से

भेंट देते है। और हमने उनका कार्य तो किया ही है, तो वह भेट लेने का हमको अधिकार है।'

पर अतिसुखी (!) बन गए ऐसे मित्रों की सलाह को (!) इस भाई ने आज तक स्वीकारी नहीं है और अभी तो स्वीकारने का प्रश्न भी नहीं है।

उनको कभी ऐसा नहीं लगा कि मेरा तिरस्कार हो रहा है। उनके लिए स्टेटस बड़ा नहीं था। पूरी खुमारी के साथ ये मध्यमवर्गीय भाई जी रहे है। अरबपति बनने की तमाम अनुकूलताओं को दूर करके एक महान आदर्श खड़ा किया है कि 'इस काल में भी नीति का धन कमा सकते है, नीति के साथ जी सकते है।'

मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने संघ में जो जो अच्छे कार्य होते है, उसकी टीप में सबसे प्रथम इस भाई का 1रु. लिख लेने के पश्चात् ही दूसरों के लाखों रुपये लिखने चाहिए।

क्योंकि अनीति के करोड़ों रुपये से नीति का एक रुपया भी कार्य को सफल बनाने में सक्षम है।

षोडशक प्रकरणादि ग्रन्थों में मंदीर बनाने आदि कार्य नीति के पैसे से करने की बात और अनीति का पैसा भूल से भी आ गया हो, तो वह पुण्य हमको नहीं, पर जिसके पैसे होंगे उसको मिलेगा.....यह बात बताने में आई है।

ऊपर की बातें मार्गानुसारिता के गुणों में आती है, वह तो मिथ्यात्वगुणस्थान में भी हो सकती है। अब मोक्ष की सुंदर आराधना भी देखते है।

4) पिछले तीन वर्षों से वे अधिकतर एक ही टाइम वापरते है। पच्चक्खाण एकासणा का नहीं, पर वापरना एक टाईम।

5) पांच तिथी आयंबिल !

6) उनके आंबिल की यह विशेषता है कि संघ के आंबिलखाते में जाकर पहले वे सभी को परोसते है, सभी तपस्वीओं की भक्ति करते है, बाद में सभी तपेले देख लेते है, उनमें जो वस्तु सबसे ज्यादा बची हों, ऐसी दो ही वस्तु का आंबिल कर लेते है।

ऐसा करने का कारण क्या? सुनों!

* मुझे अमुक दाल तो चाहिए ही..... ऐसा द्रव्य का आग्रह टूट जाए।

* दूसरे तपस्वीयों ने जो वस्तु वापरी ना हो, कम उपयोग हुआ हो..... वहीं अधिक होती है। वह यदि स्वयं ना वापरे, तो अंत में वस्तु वेस्ट हो जाती है इसलिए वही वापरनी।

* दूसरों ने ना वापरी हो इसलिए अधिकतर वह वस्तु मनपंसद नहीं होती, इसलिए उसको ही वापरने में आसक्ति टूटती है।

* स्वयं अंत में बैठते है, इसलिए जो दो द्रव्य वापरने हो, वह ठंडे हो गये हों । उन सब में आसक्ति होने का प्रश्न ही ना रहे।

* अंत में परोसने वाले, आग्रह करने वाले नहीं होते.... इसलिए रागपोषक वस्तु वापरने का प्रश्न हीं नहीं आता।

7) गांधीनगर चातुर्मास के दौरान मैंने पर्युषण में अट्ठाई की प्रेरणा की, पर विशिष्ट अट्ठाई ! रोज एक ही द्रव्य वापरना, इस तरह आठ दिन !

उस भाई ने ऐसी अट्ठाई की।

सिर्फ पोहे

सिर्फ थेपला

सिर्फ खाखरा

इस तरह पाँच एकासणा किया।

अंतिम तीन दिन उपवास किये। (यानि अट्ठम)।

पारणा के दिन अट्ठम से ऊपर की तपश्चर्या वालों के पारणें उसी संघ में थे। नीचे के हॉल में पारणा होने से हम साधु ऊपर के हॉल में चले गए। लगभग साढ़े दस बजे वह भाई ऊपर आये।

''पारणा हो गया?'' मैंने प्रश्न किया।

''नहीं ! पच्चक्खाण लेने आया हूँ, बियासणा है।''

''भले, पर इतना लेट ! सबका तो हो गया है.....?''

''हाँ जी ! सभी को परोसने में - भक्ति करने में खड़ा था। ऐसा लाभ कहां से मिले?''

''वाह !'' मेरा अंतर मन नाच उठा।

ये भाई कोई तपस्वी या शक्तिशाली नहीं है। फिर भी भावनाओं के सामर्थ्य

को बढ़ाते है।

आधे घंटे के बाद वे पुनः आये।

''क्या वापरा ?'' मैंने पूछा।

वे मौन रहे।

''सच बोलो, मुझे जानना है।''

''पूरी + दूध।''

''दो ही द्रव्य?''

''हाँ जी !''

''अरे, परंतु नीचे तो ढेर सारी वस्तुएँ थी। क्या सब खाली हो गयी ?''

''सब कुछ है, पर द्रव्यसंक्षेप किया है।''

''पर दूसरों ने आग्रह नहीं किया?''

''इसलिए ही लेट बैठा। कोई ना हो, तो स्वयं ही लेकर बैठ जाते है। आग्रह कौन करें?'' दिल से बोले उन शब्दों ने सचमुच मुझे रूला दिया। क्या उस भाई का वैराग्य !

क्या उस भाई का विरति परिणाम ! कमाल ! कमाल ! कमाल !

8) उनके पास मारुति वेन है, लड़की के पास एक्टीवा है। लड़की गांधीनगर से साबरमती बस में पढ़ने के लिए आती है।

मैंने कहा, ''एक्टीवा है, तो उसका उपयोग नहीं कर सकते? स्वयं का वाहन हो तो आने-जाने में सुविधा रहती है। पढ़ने का समय ज्यादा दे सकते है।''

उसने कहा ''म.सा. ! एस.टी. बस तो हम जाये या ना जाये तो भी जाने वाली है।

हाँ ! उसमें अपने भाग में पाप आता है, पर एस.टी. की विराधना का पाप सभी मुसाफिरों के हिस्से में आता है, इसलिए दोष कम लगता है ना? लड़की एक्टीवा लेकर जाती है, तो उसका दोष उसे ही लगता है।

इसलिए हमारे परिवार में से कोई भी एक-दो जाये, तो अधिकतर एस.टी. वगैरह का ही उपयोग करते है।

हाँ ! पूरे परिवार को साथ में जाना हो, तो वेन लेनी पड़ती है। वैसे जहाँ एस.टी की सुविधा बराबर ना मिले, समय बराबर ना हों, वहाँ एक्टीवा लेना पड़ता

है। पर साबरमती जाने में तो बस की सुविधाएँ बराबर मिल जाती है, इसलिए वहाँ अंगत वाहन का उपयोग नहीं करते।

9) दसवीं की परीक्षा में लड़की का एक पेपर एकदम खराब गया। क्लासरूम में से बाहर आकर पापा को देखते ही रोने लगी। ये भाई (जबरदस्त) गभीर!

''देखों बेटी! बिलकुल चिंता मत कर। एक वर्ष वापस पढ़ना पड़ेगा तो पढ़ना। पर उसके लिए मन नही बिगाड़ना। चल मैं तेरे साथ हूँ।'' ऐसा जोरदार आश्वान दिया कि लड़की की चिंता का भार उतर गया।

स्कूटर पर बैठकर घर गये। लड़की को मम्मी के उपालंभ का भी भय !

पापा जानते ही थे, अभी तो लड़की घर पर पहुँची ही नहीं थी, उससे पहले फटाफट पहुँचकर श्राविका को कह दिया कि ''लड़की को बिलकुल उपालंभ मत देना। पूरा आश्वासन ही देना।''

ऐसा ही हुआ, लड़की का उत्साह टूटने से बच गया। (हालाँकि वह फैल नहीं हुई, वर्ष भी बिगड़ा नहीं।)

पर परिस्थति के अुनसार मन को उदार बनाने की उनकी यह विशिष्ट लाक्षणिकता!

10) मेरे लिए वे अंगत मंत्री जैसे भी है। शासन के कार्यों के हेतु चर्चा विचारणा करनी हो, तो उनके साथ चर्चा करनी अच्छी लगती है। उनके पास से नए-नए चिंतन, नये रास्ते, नयी दिशा भी मिलती है। गंभीर से गंभीर कार्य हो, तो भी उसके लिए वे विश्वासपात्र व्यक्ति !

11) उन्होंने पहले से ही बेटियों को ऐसे संस्कार दिये कि रात को यदि आठ बजे के बाद वे घर के बाहर हो, तो माँ-बाप के साथ ही हो। लड़कीओं को भी यह संस्कार अच्छे लगते है और वे पूरी निष्ठा के साथ स्वेच्छा से उनका पालन भी कर रही है।

12) वर्षों पूर्व उनके सामने मिथ्यात्वी देव-देवीयों को मानने-पूजने की बात आयी थी..... पर तब वे मक्कम रहे। जो भी हो, पर संसार के तुच्छ विषयों के लिए विधिविधान कराने की उनकी बिलकुल इच्छा नहीं थी।

आज भी उसी ही सात्विकता के साथ जी रहे है। देवाधिदेव के सिवाय किसी

को भी मानने के लिए वे हरगीज तैयार नहीं है।

13) उनकी तीसरी लड़की के अभ्यास का अंतिम वर्ष है। मैंने प्रेरणा तो की है कि ''इसे भी जैनधर्म का अभ्यास करा दो, तो बहुत फायदा होगा।''

शायद तीसरी लड़की भी तैयार हों, तो आश्चर्य नहीं है।

14) उनकी श्राविका को वर्षीतप चालू करके चार मास हो गये है। मैंने बीच में हंसते-हंसते कहा कि ''आपके बियासणा को संभालने में लड़कीओं का अभ्यास बिगड़ता है।''

उन्होंने गंभीरता के साथ कहा, ''मेरे लिए मैं इनका अभ्यास बिगड़ने नहीं दूँगी। बियासणा की सभी व्यवस्था मैं कर लूँगी। फिर भी आप पारणा करने का कहेंगे तो वह भी करने की मेरी तैयारी है।''

चार मास की आराधाना के बाद भी साध्वीजी भगवंतों के पाठ ना बिगड़े इसके लिए चार मास की आराधना गौण करके वर्षीतप का पारणा कर लेने की तैयारी, यह मन-विजय ही कहलाता है ना?

15) मर्यादा पालन जबरदस्त !

लगभग तो वे बहने मेरे पास या कोई भी साधु के पास जाती ही नहीं है। अगर आना हो तो भी पापा के साथ ही आती है।

पापा पहले मेरे पास आते है, इजाजत मांगते है, कि ''लड़कियाँ अंदर आ सकती है?'' हम इजाजत दे, उसके पश्चात् ही बाहर जाकर बहनों को लेकर आते है। चारेक वर्ष में तो लगभग 12-15 बार तो ऐसा बना ही होगा। पर मर्यादा पालन में कोई खामी नहीं।

अंदर आने के बाद उनके कार्य की बात पूरी हो जाये, तो पापा कहते है कि ''वे अब बाहर जायें?'' और संमति मिलते ही बाहर जाकर बैठती हैं, पापा अंदर एकाद घंटा भी बैठे, तो भी वे बहने बाहर गाड़ी में पुस्तक वांचनादि करती हैं, पर बिना कारण साधु के उपाश्रय में ज्यादा ठहरती नहीं।

यह मर्यादा तो उन्होंने स्वयं ही सीखी है, हमने सिखाई नहीं है।

मैंने उनको कहा कि ''तुम अपने जीवन के सभी प्रसंग मुझे लिखकर भेजो, वह लोगों के लिए बहुत उपयोगी और मार्गदर्शक बनेंगे।''

उन्होंने स्पष्ट ना कही। मेरे बहुत आग्रह के बाद यह बात स्वीकारी। पर चारेक दिन के बाद पुनः आकर उन्होंने क्षमा माँगी । ''म.सा. ! मेरे प्रसंगो को लिखने के लिए मेरी कलम नहीं चल रही है। आपके दबाव के कारण मैंने मेहनत की है, पर मेरा मन नहीं मान रहा है।''

बहुत सारी बातें मैं उनके जीवन की जानता ही नहीं हूँ।
बहुत सारी बातें जानी होगी, पर लिखते वक्त सब तो याद नहीं आती। फिर भी जितना याद आया, जिसका मैंने स्वयं अनुभव किया, नजरोनजर देखा, कानो कान सुना.....वह सब यहाँ लिख दिया है।

हाँ !

एक प्रसंग याद आया।

अमेरिका में रहते उनके एक श्रीमंत मित्र को पूरे शरीर में सोरियासिस नाम का रोग हुआ। इतना भयंकर कि उसकी वेदना उस भाई के लिए अत्यन्त असह्य बनी। उनको तेल-मिरची-नमक वि. सब छोड़ना पड़ा। सिर्फ उबला हुआ और मसाला रहित खाना चालू करना पड़ा। उनको रुचिकर नहीं था पर कोई विकल्प भी नहीं था।

गांधीनगर वाले इस भाई को मित्र के रोग का पता चला। उन्होंने एक प्रक्रिया चालू की। वह भाई जो खाता है, वही खाना, जिस तरह जीता है उस तरह ही जीना। वह जो पथ्य पालता, वही पथ्य पालना..... इस तरह भाई के लिए अपनी इच्छाओं का भोग देकर प्रार्थना करनी कि 'हे प्रभु ! तू उसको अच्छा कर देना।'

दूसरी ओर उस भाई को यह पता नहीं चलना कि ''मैं तुम्हारें लिए यह भोग दे रहा हूँ।''

जिस दिन उसको पता चलेगा, उस दिन से पूरा ही व्यवहार बंद, पूरा पालन ही बंद, क्योंकि बाद में उसकी असर नहीं रहेगी।

लगभग 6 महिने उन्होंने इस तरह बिताए, सिर्फ बाफे हुए और मसाला रहित खाना खाकर दिन बिताए ।

दूसरी ओर अमेरिका निवासी मित्र को आश्चर्यजनक लाभ हुआ। फटाफट सुधरने लगा, उनको भी अचंभा हुआ।

अचानक भारत, गांधीनगर आना हुआ। योगानुयोग इनके साथ ही भोजन करना हुआ। उस मित्र ने पूछा ''आप क्यूं ऐसा वापर रहे हो?'' इसलिए इस भाई ने जवाब दिया, ''आज तक आपके लिए मैंने इस तरह वापरा था, पर अब आपको बता दिया है इसलिए बंद!''

यह हुई एक आत्मकथा।

हजारों संयमीयों, संसारीयों को ये बताना चाहता हूँ कि एक श्रावक और उनकी दो लड़कीयाँ और उनकी श्राविका वगैरह सिर्फ और सिर्फ साध्वीजी भगवंतों के विकास के हेतु, उनके अभ्यास को बढाने के लिए, एक बड़ा साहस कर रहे है।

और उसमें उनको सफलता मिली है।

उन्होंने जिनशासन के लिए कुरबानी दी। तो जिनशासन उनकी कुरबानी की सराहना करेगा ही, उसकी किमत होगी ही, और इसलिए ही अब संयमीओं के चारों तरफ उनकी यश-कीर्ति-प्रतिष्ठा बढ रही है। इसीलिए यह लेख लिखा है।

1) साध्वीजी उनकी भावना को समझकर उसके लिए सघन पुरुषार्थ करे। उनकी भावना एक ही है कि साध्वीजी साध्वीजी के पास ही पढ़े, उनके पास ही तैयार हो। यह शक्य नहीं बने तो बहनों के पास ही तैयार हो। शक्य हो, तो विजातीय के पास ना पढ़े।

2) यह लेख लिखा है, उन बहनों को प्रेरणा देने के लिए कि जो बहनें जबरदस्त बुद्धिमान है, शक्तिमान है, जिनकी वक्तृत्वशक्ति अच्छी है। वे बहनें खुद की इस शक्ति का उपयोग गलत स्थान में करने के बदले जिनशासन की सेवा के लिए उपयोग करें।

जो दीक्षा लेने के लिए तैयार नहीं है, फिर भी जो संसार में रहकर सुंदर धर्म करने की इच्छा रखते है, उनके लिए, वैसे न्यू जनरेशन के लिए यह एक सर्वोत्तम मार्ग है, सर्वोत्तम आदर्श है।

भूतकाल में श्रावकों ने श्रुतज्ञान की रक्षा हेतु जबरदस्त भोग दिया था। वर्तमानकाल में 20-30 श्राविकाएँ साध्वीजी भगवंतों में श्रुतज्ञान की वृद्धि के

लिए जबरदस्त भोग दें, तो दस वर्ष में तो श्रमणसंघ की कायापलट हो जायेगी।

3) यह श्रमणी संघ जैन संघ का महान सैन्य है। उनको जरूरत है शास्त्ररुपी शस्त्रों की। शस्त्र के बिना बिचारा सैन्य क्या करेंगा? शास्त्ररुपी शस्त्रों को देने की जवाबदारी उनके गुरुजनों की है। पर बुढापे आदि कारणों से जो गुरुजन वो जवाबदारी निभा न सके, तो फिर श्राविका संघ यह जवाबदारी निभा ले यह इस काल की माँग है।

अंत में,

उन दो बहनों के नाम तो नहीं देता, पर ऐसी आत्मकथाओं में बहुतों की तीव्र भावना होती है वे नाम जानने की। उसमें भी अशक्य लगती बात को पढकर तो कितनो को अश्रद्धा हो ही जाती है। ऐसा लगने लगता है कि ''यह सब बातें हमने ही बनाई है।''

हालाँकि यह अश्रद्धा अब धीरे-धीरे नाबुद होने लगी है। फिर भी इस भाई का नाम तो दे ही देता हूँ। किसीको उनसे संपर्क करना हों, तो कर सकते है। उसके लिए उनका मोबाईल नम्बर यहाँ देने में आया है।

(इन्द्रवदनभाई शाह - 9429356297)।

भावना हों तो करना उनसे संपर्क....

इच्छा हों तो गा. न. जाकर करना उनका सत्संग.....

उत्कंठा हो तो सामर्थ्य प्रगटाकर बनना उनके सदृश....

इतने वर्ष हुए, उनको आर्थिक चिंता खड़ी ही नहीं हुई। जबरदस्त संतोष-समाधि के साथ जीवन जी रहे है। ऐसे लगता है कि ''जो धर्म की रक्षा करते है, धर्म उसकी रक्षा करता ही है।'' यह पदार्थ 100 प्रतिशत सच्चा है।

हम सभी श्रुतधर्म के लिए + चारित्रधर्म के लिए ऐसे भोग देने वाले बने, कम से कम ऐसी भावना वाले बने, वहीं सिर्फ एक परमकृपालु परमात्मा को प्रार्थना!

* सहयोगी *

ओसियन हाईट्स सोसायटी, चेन्नई